Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मूल बंगला से अनूदित

आर्य शास्त्र प्रदीप

मूल लेखक: स्वामी शिवरामकिंकर योगत्रयानंद जी

अनुवादक: एस. एन. खण्डेलवाल

चतुर्थ भाग

R6947x2,1
152N1K

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

R6947x2,1 8599
152N1K
Khandelwal, SN, tr.
Aryashashtrapradeep

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS
R694?a2,1
152N1K
8599
S.J.V.J. PRATISHTHAN
LIBRARY

SHRI JAGADGURU VISHWARADHYA JNANAMANDIR
(LIBRARY)
JANGAMAWADIMATH, VARANASI

❁ ❁ ❁ ❁ ❁

Please return this volume on or before the date last stamped
Overdue volume will be charged 1/- per day.

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आर्यशास्त्र प्रदीप

[चतुर्थ भाग]

(मूल बंगला से अनूदित)

मूल लेखक

भार्गव शिवरामकिंकर योगत्रयानन्द

(पूर्वनाम पं० शशिभूषण सान्याल)

अनुवादक

एस० एन० खण्डेलवाल

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDAL
LIBRARY
Jangamwadi Math, Varanasi
ACC No. ....

प्रकाशक :

भारतीय विद्या प्रकाशन

वाराणसी : दिल्ली

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रकाशक

©भारतीय विद्या प्रकाशन
पो० बा० नं० ११०८, कचौड़ी गली, वाराणसी—२२१००१
१, यू० बी०, जवाहरनगर, बैंग्लोरोड, दिल्ली—११०००७

R6947x2.1
152N1K

I S B N : 81—217—0095—7
81—217—0096—5

मूल्य : ४० रु०

S.J.V.J. PRATISHTHAN
LIBRARY
Jangamawadimath, Varanasi
Acc. No.

प्रथमावृत्ति १९९१ ई०

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDAL
LIBRARY
Jangamwadi Math, Varanasi
ACC No. 8599

मुद्रक :

विजयलक्ष्मी प्रेस
ए० १३/४३ प्रहलादघाट, वाराणसी—२२१००१

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

निवेदन

आर्यशास्त्र प्रदीप का चतुर्थभाग समाप्तप्राय: है। यह इसकी समाप्ति नहीं है क्योंकि चतुर्थ भाग की जो प्रति प्राप्त हो सकी थी, उसका शेषांश कीटभक्षित होने के कारण, जितना अंश पढ़ा जा सका, उसी का अनुवाद प्रस्तुत है। यह ग्रंथ लेखक ने अनुक्रमणिका के ही रूप में लिखा था। मूल ग्रंथ तो लिखा ही नहीं जा सका। वह ग्रंथ प्रणेता के अस्तित्व में (उनके अनंतात्मक व्यापक अस्तित्व में) परावाक्रूप से चिरसमाहित रह गया है। इतने पर भी यह कहना आवश्यक है कि जो कुछ भी अद्यावधि प्राप्त हो सका, वह अपने आप में पूर्ण न होकर भी अपूर्ण नहीं है। कारण यह है कि यदि पूर्ण में अपूर्ण की सत्ता सन्निहित नहीं है, उस स्थिति में पूर्ण भी अपूर्ण है। अत: पूर्ण में अपूर्ण का सम्मिलन ही पूर्ण को यथार्थ पूर्ण स्वरूप प्रदान करता है।

ग्रन्थकार ने ग्रन्थ लेखन से पूर्व ग्रन्थ की एक Synopsis (आलोच्य विषय समूह का समसन) अंकित किया था। इसके अवलोकन से विदित होता है कि प्रात: स्मरणीय ग्रन्थकार ने अपनी व्यापक दृष्टि में प्रतिफलित एवं साक्षात्कृत तत्व समूह का अत्यन्त विशद रूप से भाषांकन करने का उपक्रम निश्चित किया था। वह (Synopsis) इस प्रकार हैं—

(1) उपक्रमणिका अथवा उपोद्घात प्रकरण—समग्र ग्रन्थ के आलोच्य विषय समूह का समसन (Synopsis)।

(2) आर्य एवं अनार्य—'आर्य' का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ विचार, आर्य शब्द का शास्त्रीय प्रयोग, आर्य-अनार्य लक्षण, आर्यो का आद्य निवास आर्यावर्त्त, भारतवर्ष ही आर्यो का चिरवास स्थान है। क्या आर्य एवं आरियन (Arian) एक हैं, इस सम्बन्ध में स्वदेशी एवं विदेशी मत।

(3) शास्त्र एवं शास्त्र प्रयोजन का सम्बन्धाभिधेय सम्बत्व निर्णय—शास्त्र शब्द की निरुक्ति, शास्त्रशब्द का शास्त्रीय प्रयोगी प्रयोजन शब्दार्थ, अभिधेय शब्दार्थ, सम्बन्ध शब्दार्थ, शास्त्र प्रयोजन, शास्त्राभिधेय, शास्त्र सम्बन्ध, शास्त्र ही एकमात्र सम्बन्ध है; शास्त्र ही भवसागर में दिग्दर्शक यन्त्र है, शास्त्र का प्रकृतमर्म जानने के लिये कैसे प्रयास करें।

(4) तर्कशास्त्र (Logic)—तर्क का लक्षण, तर्क का प्रयोजन, संस्कृत शब्द तर्कशास्त्र तथा लाजिक के संक्षिप्त तथ्य एवं दोनों की तुलना (Comparison)।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(5) **विज्ञान (Science)**—विज्ञान का व्युत्पत्तिलभ्य एवं कोषोक्त अर्थ-संग्रह, विज्ञान शब्द का शास्त्रीय प्रयोग, विज्ञान एवं साईन्स, क्या दोनो एक पदार्थ हैं, जड़ एवं अध्यात्म विज्ञान, जड़ विज्ञान सम्बन्धित संक्षिप्त विवेचन, 'अध्यात्म' नामक किसी पदार्थ के अस्तित्व को स्वीकार करने का प्रयोजन है किंवा नहीं है, अध्यात्म विज्ञान तथा जड़ विज्ञान की चरमोन्नति, अध्यात्म विज्ञान न जानने से विज्ञान पिपासा नहीं मिटती, विज्ञान का श्रेणी विभाग (Classification of Science) गणित का दार्शनिक तत्व (Philosophy of Mathemetics)।

(6) **दर्शन**—दर्शन की निरुक्ति, कितने प्रकार के अर्थ व्यवहृत होते हैं, यह कितने प्रकार का है, नास्तिक दर्शन के प्रकार भेद, आस्तिक तथा नास्तिक दार्शनिक मत अनादिकाल से प्रवर्तित हैं, अस्तिक दार्शनिकों के पारस्परिक मतभेद का कारण, आप्तदार्शनिकों में स्वरूपतः मतभेद नहीं है, द्वादश दर्शनों का संक्षिप्त-तत्व, दर्शन तथा फिलासफी एक ही हैं अथवा नहीं, फिलासफी का लक्षण, फिला-सफी का संक्षिप्त इतिहास।

(7) **वेद तथा वेद्य**—वेद शब्द की निरुक्ति, वेद का अपर पर्याय एवं उसकी निरुक्ति, वेद के आंगोपांग, व्याकरण का दार्शनिक तत्व, वेदवेद्य विषय निरूपण, एक ही वेद चतुर्धा विभाजित है, वेदोत्पत्ति, देवतातत्व, वेद का अपौरुषेयत्व, ब्राह्मण भाग का वेदत्व प्रमाण, वेद सम्वन्धित विरुद्ध मतों की समालोचना, मन्त्रतत्व, वेद अथवा श्रुति ही निखिलज्ञान प्रसूति है।

(8) **पुराण एवं इतिहास**—पुराण इतिहास किसे कहते हैं, प्रतिपाद्य विषय, पुराणेतिहास पंचम वेद है, काल्पनिक नहीं है।

(9) **तन्त्र**—तन्त्र का अर्थ, लक्षण, प्रतिपाद्य विषय, तंत्र श्रुति का ही विभागान्तर हैं।

(10) **स्मृति**—स्मृति का यह नाम क्यों पड़ा, स्मृति का प्रतिपाद्य विषय, प्रामाणिकत्व।

(11) **धर्मव्याख्या**—धर्म की निरुक्ति तथा कोषोक्त अर्थसंग्रह, धर्मशब्द वेदादि शास्त्र में जिस अर्थ में प्रयुक्त है, धर्म कौन पदार्थ है, धर्म के साथ विज्ञान सम्वन्ध का विचार, धर्म तथा रिलिजन समान है अथवा नहीं, आर्यो का सभी शास्त्र धर्मशास्त्र है, धर्म ही विश्व जगत् की प्रतिष्ठा है, निखिल वस्तु धर्म में प्रतिष्ठित है, आर्यधर्म सर्वधर्म का मूल है।

(12) **शास्त्र स्थान तथा शारीरक्रियातत्व** (Anatomy and Physio-logy) प्राणविद्या (Biology), समाज विज्ञान (Sociology)।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(13) अदृष्टतत्व—अदृष्ट शब्द का अर्थ, इसके अस्तित्व के सन्दर्भ में अनुकूल मतों का संग्रह तथा समालोचना, पाप-पुण्य तथा कर्मतत्व, प्रेत्यभाव अथवा पुनर्जन्म, स्वर्ग एवं नरक।

(14) मुक्तिवाद—मुक्ति किसे कहते हैं, मुक्ति सम्बन्धित स्वदेशी-विदेशी मत संग्रह, मीमांसा, मुक्ति के प्रकार भेद।

(15) अवतारवाद—अवतार का तत्व निर्णय, यह वेद सम्मत है अथवा नहीं। स्वामी दयानन्द की अवतारवाद सम्बन्धित प्रतिकूल युक्तियों की समालोचना।

(16) चिकित्सा शास्त्र—संस्कृत एवं विदेशी (एलोपैथिक–होमियोपैथिक) चिकित्सातत्व, योगबल तथा ज्योतिष से चिकित्सा में क्या सहायता मिलती है।

(17) उपासना (साधनातत्व)—उपासना क्या है, क्या प्रयोजन है, उपासक तथा उपास्य।

(18) योगतत्व—क्रियायोग, ज्ञानयोग एवं भक्तियोग प्रभृति पद्धति, आश्रम चतुष्ठय।

(19) साधुजीवनी—प्रसिद्ध साधकों का संक्षिप्त जीवन चारित्र।

यह समसन यथावत् उद्धृत किया जा रहा है। ग्रंथ के अन्त में 141 संस्कृत संन्दर्भ ग्रन्थ तथा 111 आंग्लभाषान्तर्गत संदर्भ ग्रन्थ की सूची अंकित की जा रही है। मूलग्रंथ में सन्दर्भ ग्रंथ सूची अलग से नहीं दी गयी है। यह सूची पुस्तक के चारो खण्ड से बनाई गयी है।

बुद्ध पूर्णिमा 1991 ई०

निवेदक—

एस. एन. खण्डेलवाल

B 31/32 लंका, वाराणसी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विषयानुक्रमणिका

अध्याय ४ (शेषांश) पृष्ठ संख्या

(१) शास्त्रानुशीलन १—१२२

संयोग, रूप एवं वर्ण, आलोक क्या है, शब्द तथा आलोक, ताप, इस सम्वन्ध में शास्त्रमत, वेद का स्थूलरूप लुप्त है, उपवेद भी विलुप्त है, वेद के अंग-उपांग, जड़ विज्ञान तथा अध्यात्म का ऐक्य, गणित सम्मत उपपत्ति, परचित्तज्ञान, प्रत्यक्ष, वस्तु की स्वच्छता-अस्वच्छता का कारण, विज्ञान का प्रतिपाद्य विषय, ब्रह्मशब्द की व्युत्पत्ति, कार्य का कारणानुसंधान, ज्ञानोत्पत्ति का पाश्चात्य मत, प्रतिचिन्तन, विज्ञान की विशेषता, विज्ञान शब्द का अर्थ, विज्ञान एवं साधारण ज्ञान, विज्ञान का विभाग, प्रत्येक विभाग का लक्षण-अभिधेय, न्यायशास्त्र, लाजिक विज्ञान है अथवा शिल्प, शिल्प तथा विज्ञान का पारस्परिक भेद, न्याय एवं लाजिक का लक्षण समन्वय, व्यवहित तथा अव्यवहित सत्य, तर्कशास्त्र का प्रामाण्य, प्रत्यक्षवाद अनुवृत्ति न्याय, क्या प्रकृति का पूर्णरूप परिदृष्ट होता है ।

(२) संदर्भ ग्रंथ सूची

—o—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आर्यशास्त्रप्रदीप

(चतुर्थ भाग)

अध्याय ४

शास्त्रानुशीलन

संयोग

विषय एवं इन्द्रियों का संयोग होने पर ही वस्तु का स्वरूप ग्रहण हो सकता है। विषयों के साथ इन्द्रिय संयोग कैसे होता है? यह ज्ञातव्य है। भगवान कणाद की चरणकृपा से ज्ञात हो सका है कि संयोग त्रिविध है, यथा अन्यतरकर्मज, उभयकर्मज तथा संयोगज।[1] अतएव यह ज्ञातव्य है कि विषयेन्द्रिय संयोग का स्वरूप अन्यतरकर्मज है, अथवा उभयकर्मज है, किंवा संयोगज है? जिस संयोग से संयोगी वस्तुद्वय में से एक निष्क्रिय अथवा उदासीन (passive) है, तथा दूसरा सक्रिय (active) है, जिस संयोग में एक वस्तु प्रसर्पित होकर निष्क्रिय वस्तुस्तर के साथ संयुक्त होती है, उसे अन्यतरकर्मज कहते हैं। स्थिर पर्वत के साथ सक्रिय पक्षी का संयोग अन्यतरकर्मज संयोग का उदाहरण है। जिस संयोग में संयोगी वस्तुद्वय में दोनों क्रिया के कारण हैं, जिस संयोग में उभय ही सक्रिय हैं, वह संयोग उभयकर्मज है। अन्योन्य विजीगीषु (एक दूसरे को जीतने में प्रयत्नशील) मल्लद्वय (दो पहलवान), पारस्परिक संयुयुक्षा युक्त लौह एवं चुम्बक, उभयकर्मज संयोग के उदाहरण हैं। संयोग से जो सम्बन्ध घटित होता है, उसे संयोगज सम्बन्ध कहते हैं। चिन्तनशील पाश्चात्य दार्शनिक स्पेन्सर कहते हैं कि अन्यतर एवं उभयकर्मज संयोग भेद के अनुसार गुण (Attributes) को भागत्रय में विभक्त किया जा सकता है। जिस गुण में प्रत्यक्ष विषय सक्रिय है, Active है, विषयी निष्क्रिय (Passive) है, जिस गुण की प्रत्यक्ष विषयक क्रियाशीलता के कारण इन्द्रियार्थ संयोग होता है, वह गौण (Secondary) गुण है। विद्वान स्पेन्सर इसे Dynamycal कहते हैं। विद्वान स्पेन्सर शब्द, स्पर्श एवं गंध प्रभृति गुणत्रय को डाइनामिकल गुण का ही दृष्टान्त मानते हैं। घात-प्रतिघातजनित शब्द अपने उत्पत्तिस्थल से वीचितरंग न्यायानुसार

---

(१) "अप्राप्तयोस्तु या प्राप्तिः सैव संयोग ईरितः। तृतीयः स्यात्" (भाषा परिच्छेद)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रवाहित होकर हमारी श्रोत्रेन्द्रिय का स्पर्श करता है। वस्तुसमूह तप्त किये जाने पर ताप का विकिरण करने लगते हैं। यह ताप विकीर्ण होने पर हमारी स्पर्शेन्द्रिय के साथ संयुक्त होता है। गन्ध भी गन्धयुक्त द्रव्य से आकर हमारी घ्राणेन्द्रिय से संयुक्त हो जाता है। अतः यह विदित होता है कि शब्दस्पर्शादि गुण के प्रत्यक्ष में ग्राह्यात्मक विषय ही क्रियाशील है। (The object is active)। विषयों की क्रियाशीलता के ही कारण शब्दस्पर्शादि का प्रत्यक्ष होता है। इसी कारण विद्वान स्पेन्सर शब्द-स्पर्शादि संयोग को अन्यतरकर्मज तथा शब्दस्पर्शादि को Dynamical गुण कहते हैं। जिस गुण का प्रत्यक्ष विषय-विषयी (object-Subject) द्वारा निष्पन्न होता है (दोनों की समवेत क्रिया के द्वारा निष्पन्न होता है), जिसमें दोनों ही सक्रिय हैं, जिस गुण के प्रत्यक्ष के लिये विषयी मुष्टिग्राह (grasping), ताड़न (Thrusting), आकर्षण (Pulling) अथवा अन्य प्रकार की यांत्रिक क्रिया के द्वारा साक्षात्भाव से विषय के साथ संयुक्त होता है, जिस गुण के प्रत्यक्ष में विषय तथा प्रतिक्रिया के द्वारा विषयी पर समवेग से प्रतिघात होता है, वह गुणसंयोग उभयकर्मज (Secondo-Primary) है। यह विद्वान स्पेन्सर के मतानुसार स्टेटिको डानामिकल (Statico-Dynamycal) है। जिस गुण के प्रत्यक्ष में मात्र विषयी ही क्रियाशील (Active) है, जो गुण प्रत्यक्ष इन्द्रियों के द्वारा गृहीत होता है, (यदि वह विषय की किसी क्रिया-प्रतिक्रिया का धर्मक न हो), जिस गुण के प्रत्यक्ष में विषय संस्थान, आकृति अथवा स्थिति द्वारा क्रिया-प्रतिक्रिया विषयी को कुछ भी निरूपण करने में सहायता करे, वह गुण साधारणतः प्राइमरी (Primary) कहा जाता है। विद्वान स्पेन्सर कहते हैं कि "मैं उसे स्टेरिकल (Starical) कहता हूँ"[1]

---

(1) "The relation established between object and subject in the act of perception, is threefold. It assumes three distinct aspects, according as three is some kind of activity on the part of the object, on the part of the subject or on the part of both. If while the subject is passive, the object is working an effect upon it—as by radiating heat, giving off odour, or propagating sound, there results in the subject a perception of what may be better termed a dynamical property. If the subject is directly acting upon the object by grasping, thursting, pulling, or any other mechanical process, while the object is reacting, as it must to an eauivalent extent, the subject perceives those variously modified kinds of resistance which have

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जिन गुणत्रय का उल्लेख किया गया है, उनके सम्बन्ध में विद्वान स्पेन्सर कहते हैं कि वे सब प्रयाश: एकीभूत (संपिण्डित) रूप से उपलब्ध होते हैं। अवकाशात्मक धर्म अथवा गुण (Spas: attributes) शुद्ध संस्त्यान-प्रतिष्ठम्भ (Resistence) अथवा अन्य प्रकार के शक्तिधर्म (Other Force Attibutes) के द्वारा ज्ञेय हैं। स्पर्श वेद्य गुण (Tangible) साधारणत: आकृति संस्थान तथा स्थिति के सहयोग से परिज्ञात होता है। अस्पर्श (Non-tangible) गुण समूह (जैसे वर्ण Colour) संघातवत् द्रव्यपृष्ठ से संलग्न होकर अवस्थान करता है। अतएव उसे द्विमात्र विस्तृति से पृथक्रूपेण (Apart from extension of two dimensions) अनुभव करना संभव नहीं होता। वैज्ञानिक Helmholtze कहते हैं कि वर्णव्यूह (Systems of colours) त्रिमात्र का समाहार है। क्योंकि विद्वान थामसयंग तथा क्लार्क मैक्सवेल ने गवेषणा द्वारा यह निर्धारित किया है कि प्रत्येककरण निर्दिष्ट मात्रा में ग्रहीत मूलवर्णत्रय का मिश्रण है।[1]

एक द्रव्य को हाथ में लेकर निरीक्षण करने पर डाईनेमिकल अथवा सेकेण्डरो (Dynamicalar secondary), स्टैटिको डाईनेमिकल अथवा सेकेण्डो प्राईमरी (statico Dynamical or Secundo primary) तथा स्टैटिकल अथवा प्राईमरी (Statical or primary) प्रभृति गुणत्रय परिपाटी ही युगपत् रूप से प्रत्यक्षीभूत होती है। द्रव्य को हाथ पर रखने से ज्ञात होता है जैसे कोई कुछ प्रतिष्ठम्भ कर रहा है, बाधा दे रहा है। यह अनुभव होने लगता है। वह विषम (Rough) है अथवा मसृण-सम (Smooth) है, स्थिति संस्थापक है अथवा

---

been classed as the secundo-primary properties, but which. I prefer to class as statico dynamical. And if the subject alone is active-if that which-occupies consciousness is not any action or reaction of the object, but something discerned through its action or reaction as size, form, or position; then the property perceived is of the kind commonly known as primary, but here named statical"

—(Principles of Psychology. Vol II, P 136-137)

(1) "The system of colour is an aggregate of three dimensions inasmuch as each colour, according to the investigations of Thomas Young and of Clerk Maxwell, may be represented as a mixture of three primary colours taken in definite quantities."

—(Popular Lectures On Scientific Subjects, IInd series P. 46)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अस्थितिस्थापक है, यह विदित होने लगता है। वह दृश्य एवं स्पृश्य होने के कारण द्विविध विस्तृति विशिष्ट है, वह आकार एवं संस्थानवान है, यह उपलब्धि होती है। उसके परीक्षण से यह विदित होता है कि उससे निश्चित परिमाण में आलोक प्रक्षिप्त हो रहा है, वह गंध एवं स्वाद विशिष्ट है, यह भी ज्ञात होने लगता है।[1]

विद्वान स्पेन्सर के अनुसार आकृति, संस्थान अथवा स्थित्यात्मक, ग्राहक अथवा विषयकर्मानुभाव्य गुण स्टैटिकल (Statical) है। प्रतिष्ठम्भ अथवा संस्त्यानधर्मक, ग्राहक-ग्राह्य, यह उभयकर्मानुभाव्य गुण स्टैटिको डाइनामिकल (Statico-Dynamical) है। प्रवृत्त्यात्मक, ग्राह्यकर्मानुभाव्य शब्दादिगुणसमूह डाईनामिकल (Dynamical) है। इस प्रकार यह विद्वान स्पेन्सर का मत है।[2]

विद्वान स्पेन्सर के मतानुसार शब्दादि उपसर्ज्जन अथवा गौण (Secondary) गुणसमूह आपातिक, नैमित्तिक (Contigent, Incidental) हैं। इनमें द्रव्य-निष्ठ स्थिरगुण का अभाव रहता है।

---

(1) "The three classes of attributes thus briefly defined, which will hereafter be successively considered at length, are usually presented to consciousness together. The space-attributes are knowable only through the medium of resistance and the other force attrebutes. Tangible properties are generelly perceived in connection with form, size and position And of the non-tangible ones, colour is mostly associated with the surfaces of solids, and cannot be conceived apart from extension of two dimensions An object held in the hands and regarded by the eyes, presents to consciousness all three orders of attributes at once. It is known as something resisting, rough or smooth, elastic or un-elastic, as samething having both visible and tangible extension, form and size, as something whose parts reflect certain amounts and qualities of light; and on further examination, as something specially scented and flavoured" —(Principles of Psychology, Vol II, P 137)

(२) विद्वान हैमिल्टन कहते हैं कि प्राइमरी (primary), मौलिक अथवा आद्य गुण समूह (स्पेन्सर के मतानुसार statical) द्वारा बाह्य द्रव्य (Body) द्रव्यरूपेण परिज्ञात होता है। द्रव्य का द्रव्यत्व ही मौलिक गुण (प्राईमरी गुण)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS.

हैं। अन्यान्य गुण के द्वारा इत्थम्भूतत्व (suchness) निर्वाचित होता है। (The primary qualities are attributes of body as body, where as the others are of this and that body properly qualities, such-ness) । सेकेण्ड्री-प्राइमरी गुणसमूह के पृथक्भूत अथवा उपेक्षित होने पर भी वाह्यद्रव्य की भावना अव्यावहृत बनी रहती है।

"The secundo primary qualities, dependent on the apprehen-sin of the fact and mode or degree of resistance are contigent or accidental. They may be dispensed with, and get the Con-ceptions of body remains."—

(Hamilton, by J. Veitch, p. 143, 144)

प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान् लाक् (Lock) ने गुण (Qualities) को प्राइ-मरी (Primary) एवं ओरिजिनल (Original), अथवा एसेन्सियल (Esse-ntial) एवं सेकेन्डरी (Secondary) रूप भागद्वय में विभक्त किया है। "These qualities and powers, he finds, are of two sorts. A few inseperable form our complex idea of material substance, are reffered by us to the material subs tances themselves, the exis-tencs of which he assumes. These are practically identical in our preceptions or ideas with what they are in real substance whatever reality may here mean for this idea, as already rema-rked, he dose not analyse. On the other hand, most and those the most interesting, of the qualities and powers which inter into own complex ideas of sensible things may he finds, be changed without loss of material substance. They are not (as ideas or intelligible phenomena) attributed to the material substance itself, but are found on consideration to be subjec-tive or individual sensations of persons who are conscious of them... ......Locke calls the former class primary, original or essential qualities of matter, the others, in their boundless va-riety, its secondary derived or retalive qualities. The primary, which involve mathematical relations, and are therefore quanti-ties rather than qualities, are, he, reports, inseparable from

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्पेन्सर की दृष्टि में प्रवृत्त्यात्मक (Dynamical) गुणसमूह आपतिक (Contigent) क्यों हैं ?—शब्दमात्र घात-प्रतिघात जनित, श्रोत्रेन्द्रियग्राह्य वायु-प्रवाह जनित क्रिया अथवा वीचितरंग (Wave motion) है। जलराशि में लोष्ठ निःक्षेप करने पर तरंग उपस्थित होती है। इसी प्रकार नोदन प्राप्त (अभिघात प्राप्त) सर्वतोगामी वायु में तद्रूप तरंग का जन्म होता है। यह तरंग (उर्मि) उत्तरोत्तर वायवीय अणुराशि से संक्रामित होते-होते, वहाँ (जिस वायवीय अणुस्तर के साथ श्रोता का श्रोत्रेन्द्रिय संलग्न है) समुपस्थित होकर श्रोत्रेन्द्रिय पर आधात करती है। यह आघात श्रवणेन्द्रिय को कम्पित करता है। वायुराशि से जैसी तरंग समुपस्थित हो सकी है, आघातप्राप्त श्रावणस्नायुसमूह (Auditory Nerves) में भी वैसी तरंग प्रवाहित होती है, तभी हमें शब्दज्ञान होता है।[1] अतएव शब्द आपातिक धर्म

matter, as matter, and they are in nature as they appear in our perceptions, being atonce ideas and qualities."

—(Locke, by Fraser, page 199-200)

1. "The most familiar ones are obiviously manifestations of certain forms of force, of sound, we know that it becomes sensible to us through vibrations of the membrana rympani, and that these vibration are caused by waves in the air. We know too that the body whence these proceed must be thrown into a vibratory state by some mechanical force, that it thereupon propogates undualations through surrounding matter, and that in this purely dynamical action consists the production of sound." (Principles of Psycology, vol II, p. 38)

वैज्ञानिक रिनडेल कहते हैं "From the earliest ages the question, 'what is light ?' and 'what is heat ?' have occured to minds of men, but these questions never would have been answered, had they not been proceeded by the question, what is sound ?... ... Sound ,we know to be due to vibratory motion. A vibrating tuning fork, for example, moulds the air around it into undulations or waves, which speed away on all sides with a certain measured velocity, impnge upon the drum of the ear, shake the auditory nerve, and awake in the brain the sensation of sound." (Fragments of Science, vol I, p. 74-75)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है। इसका द्रव्यनिष्ठ स्थिरगुण नहीं है। यह उत्पाद्य क्रियाज (May be generated mechanically), है। ताप भी (इसी प्रकार से) उत्पाद्य पदार्थ है। जो हाथ अभी ठंडा लग रहा है, उसे दूसरे हाथ से घिसने पर, उसमें उष्णधर्मता का अनुभव होने लगता है। सम्पीड़न (Compression) अथवा घर्षण (Friction) द्वारा तापोत्पादन होता है। वर्ण भी वस्तुनिष्ठ स्थिरगुण नहीं है। वह भी उत्पाद्य है, आधेय है।

आधुनिक पाश्चात्य वैज्ञानिकों का सिद्धान्त है कि वस्तुसमूह वर्णहीन (The object are Themselves devoid of Colour) है। जब इन्हें शुभ्र आलोक में स्थापित करते हैं, तब ये एक किरण अथवा एकाधिक किरण का परिशोषण करने के अनन्तर शेष वर्णों की किरणों का प्रतिक्षेपण कर देते हैं। जिस वर्ण की किरण जिस वस्तु से प्रतिक्षिप्त होती है, उसे उसी वर्ण की वस्तु कहते हैं। जो वस्तु लोहित वर्ण की किरणों का प्रतिक्षेपण करती है (तथा अन्यान्य वर्णों की किरणों का परिशोषण कर लेती है) उसे पीत वर्णाभ कहते हैं। इसी प्रकार हरित वर्ण युक्त वस्तु (Green objects) लोहित वर्ण आलोक का परिशोषण करती है तथा पीत एवं नील वर्णालोक का प्रतिक्षेपण करती है। परिशोषित किरणों को प्रतिक्षिप्त किरणों का अनुपूरक (Complementary) कहा जाता है। शुभ्रालोक विश्लिष्ट होकर अन्याय वर्णों को विकसित करता है। अतः किसी वस्तु की प्रतिक्षिप्त अथवा प्रतिफलित किरणों एवं उसके द्वारा परिशोषित अथवा अनुपूरक किरणों के संयोग से शुभ्रालोक ही उद्भूत होता है।[1]

समस्त आवजेक्ट (objects) वस्तु स्वयं वर्णहीन है। यहाँ व्यवहृत आवजेक्ट शब्द किस पदार्थ का वाचक है? वस्तु शब्द से हम जो कुछ समझते हैं, उसी

---

1. रासायनिक विद्वान मिल (Mill) कहते हैं "The objects are themselves devoid of colour but when placed in white light they absorb the rays of one or more colours, and reflect the rest, the object, therefore, appears to be of the colour that would be produced by the ray or mixture of rays which it reflects, green objects, for example, absorb the red rays and reflect the yellow and blue. The rays thus absorbed are said to be complementary to those that are reflected, a complementary colour being always that tint which when added to the primary colour upon the eye would constitute white light".

—(Miller's Chemical Physics, p. 157)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अर्थ में यहाँ पर आवजेक्ट शब्द का व्यवहार नहीं हुआ है। जो वास करता है, वह वस्तु है।[1] यहाँ पर आवजेक्ट शब्द "अवस्थान करता है" "वास करता है", इस व्यापक अर्थ का वाचक नहीं है। जहाँ तक ज्ञात हो सका है, उसके आधार पर हम यह कह सकते हैं कि यहाँ पर आवजेक्ट शब्द तामस (तमोगुणप्रधान) वस्तुसमूह के वाचक के रूप में प्रयुक्त हुआ है। पृथ्वी तमोगुण बहुला है। पृथ्वी की तुलना में जल में तमोगुण की अल्पता है, तथापि जल भी तमोगुण प्रधान ही है। प्रतीत होता है कि विदेशी विद्वानों ने आबजेक्ट शब्द से पार्थिव पदार्थ समूह को ही लक्ष्य किया है। वैज्ञानिक विद्वान टेट (Tait) अपने ग्रंथ में कहते हैं कि जब हम यह कहते हैं कि द्रव्य (मैटर) का बाह्यविषयक, बाह्यविषयाश्रित अस्तित्व है, (Matter has objective existence), तब हम उसके एकमात्र अस्तित्व प्रमाण (चक्षुरादि इन्द्रिय तथा मस्तिष्क क्रिया से निरक्षेप) स्वतःसिद्ध सत्ता की ओर इंगित करते हैं। ताप (Heat), आलोक (Light), शब्द (Sound), तड़ित् प्रवाह (Electric Current) इत्यादि द्रव्याकार (Forms of Matter) नहीं हैं। ये सब शक्त्यात्मक हैं। अतः इन्हें द्रव्यवत् सत्पदार्थ रूप में परिभाषित किया जाता है।[1]

---

1. "When we say that matter has objective existense, we mean that it is something which exists altogether independently of the senses and brain process, by which alone we are informed of its presence...... Heat, therefore, as well as Light, Sound, Electric currents Etc, though not forms of matter must be looked upon as being as real as matter, simply because they have been found to be forms of energy"—(वही पृ० 346-47)

विज्ञानवादी गण का कथन है कि "बाह्यार्थ वास्तव में सत नहीं है।" इनके इस कथन से वैज्ञानिक तथा दार्शनिकगण संत्रस्त हैं। विद्वान टेट विज्ञानवादियों के इस घन्टानाद से कि "बाह्यार्थ नहीं है, सभी विज्ञान (Idea) है" उद्विग्न होकर उद्धुत वचनों द्वारा स्वमत का प्रतिपादन करते हैं। इतने पर भी दुख का विषय है कि इस स्वमत प्रतिपादन द्वारा भी वे निरापद नहीं हो सके! क्योंकि विज्ञानवादियों का सुतीक्ष्ण युक्तिवाण विद्वान् टेट के तर्कों का भेदन कर देता है। अतः सर्वान्त में विद्वान् हक्सले (Huxlay) कहते हैं—"The arguments used by Descartes and Berkeley to show that our certain knowledge does not extend beyond our states of conciousness, appear to me as irrefragable now as they did when I first became acquainted with them half a century ago. All

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सांख्य पातंजल में रजोगुणप्रधान द्रव्य कहने से जिस पदार्थ का ज्ञान होता है, श्रुति ने जिसे भोक्तृभूत शब्द द्वारा अभिहित किया है, उसे पाश्चात्य विद्वान एनर्जी (Energy) कहते हैं, और वही हीट, लाईट इत्यादि का शब्दवोध्य अर्थ है। अतः "आव्जेक्ट वर्णहीन है", इस उक्ति में आव्जेक्ट शब्द के स्थूल पार्थिव तथा जलीय पदार्थ का ही तात्पर्य ध्वनित होता है।

वैशेपिक दर्शन (२।१।३) के अनुसार "तेजः" पदार्थ तो रूप एवं स्पर्श प्रभृति द्विविध गुण विशिष्ट द्रव्य है। तेज का प्रथमोक्त गुण ही विविधवर्ण योनि है, क्योंकि तेज से ही विविध वर्णों का विकास संभावित होता है। रूप, तेज का ही विशेष गुण है। अन्य द्रव्यों में तेज की सत्ता के विना रूप की विद्यमानता नहीं रह सकती। अतः शास्त्र के दृष्टिकोणानुसार "समस्त वस्तुसमूह स्वयं वर्णहीन है" इस वाक्य का कोई प्रयोजन ही नहीं है। हम जो कुछ भी उपलब्ध करते हैं, वह सब स्थूल पंचभूत है। स्थूल पंचभूत शब्द स्पर्शादि पंचतन्मात्रा की ही पंचीकृत अवस्था है।[1]

---

the materialistic writers I know, who have tried to bite the file have simply broken their teeth."

(Fortnightly Review, Dec. 1886)

—प्रकाशशीलसत्व, क्रियाशील रजः एवं स्थितिशील तमः भूतेन्द्रियात्मक हैं, (पृथ्विव्यादि स्थूल, सूक्ष्म, भूतभाव तथा श्रोत्रादि स्थूल, सूक्ष्म इन्द्रियभाव के रूप में परिणामी हैं)। यही भोगापवर्गार्थक गुणत्रय दृश्य (object) है। पूज्यपाद भगवान् पतंजलिदेव दृश्य (object) पदार्थ की सीमा का निर्धारण इसी प्रकार से करते हैं। अतः विदित होता है कि पाश्चात्य विद्वानों द्वारा निर्धारित दृश्य पदार्थ सीमा में (शास्त्रनिरूपित दृश्य पदार्थ की सीमा से) तुलनात्मक रूप से संकीर्णता व्याप्त हैं।

१. "तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि"—(सांख्य दर्शन) अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध रूप पंचतन्मात्राओं से क्षित्यादि पंचमहाभूतों की उत्पत्ति होती है। तद् मात्र अथवा तद्मात्रा = तन्मात्र। "मा" धातु के उत्तर में भाववाच्य "त्रन्" प्रत्यय लगाने से मात्रपद सिद्ध होता है। इस मात्र पद के उत्तर में "स्त्रीलिंग" "टाप" प्रत्यय लगाने से मात्रा पद की सिद्धि हो जाती है। मात्रा शब्द का अर्थ है 'साकल्य', 'अवधारण' एवं 'अविच्छेद'। वह इससे (निश्चित परिमाण से) न्यून अथवा तद्धिक नहीं है—वही तन्मात्र है। "तदेव तन्मात्रम्", "मयूरव्यंसकादयश्च" (पाणिनी २।१।७२) इन सूत्रद्वय के 'तन्मात्र' से समस्त शब्द सिद्ध हो रहे हैं अथवा "सा मात्रा यस्मिन्"। तन्मात्र तथा वैशेशिक दर्शनोक्त पर-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यदि रूप अथवा वर्ण (Colour) तेज का ही धर्म विशेष है, तथा हम जो प्रत्यक्ष करते हैं, यदि वह पंच सूक्ष्मभूतों की पंचीकृत अवस्था है, उस अवस्था में यह स्वीकार करना ही होगा कि भौतिक पदार्थ समूह वास्तव में रूप अथवा वर्ण विहीन नहीं हैं।

पाश्चात्य प्राकृतिक वैज्ञानिक विद्वान (Physicists) कहते हैं कि वर्ण (Colour) आलोक का ही परिणाम है। इस मत के साथ शास्त्र का विरोध नहीं है। शास्त्र ने कहा है कि रूप अथवा वर्ण तेज का ही धर्म है। पाश्चात्य वैज्ञानिकों का यह उपदेश है कि वस्तुसमूह स्वयं वर्णहीन हैं। जो वस्तु जिस प्रकार के वर्ण की आलोक किरणों का प्रतिक्षेप करती है, वह वस्तु उसी वर्ण युक्त प्रतीत होने लगती है। विभिन्न उर्मि परिणाह अथवा वीचि दैर्घ्य विशिष्ट आलोकतरंगे (Light, which Conscist of undulation of different Wave lengths) विभिन्न वर्णों की उत्पादक हो जाती हैं।[1]

माणु समान पदार्थ हैं। तन्मात्र समूह इन्द्रियग्राह्य नहीं हैं। इनसे उत्पन्न क्षित्यादि पंचभूत ही इन्द्रिय ग्राह्य हैं।

"तन्मात्राण्यविशेषास्तेभ्यो भूतानिपंच पंचभ्यः।
एते स्मृता विशेषाः शान्ता धोराश्च मूढ़ाश्च ॥" —(सांख्यकारिका)

इससे पहले विशेप, अविशेष, लिंगमात्र तथा अलिंग रूप चतुर्विधि गुणपर्व का विश्लेषण किया जा चुका है। विदित हो सका है कि आकाशादि पंच स्थूलभूत यथा एकादश इन्द्रियरूप षोडशपदार्थ गुणात्मकवंश (वांस) के विशेष पर्व हैं। पंचतन्मात्र (शव्द तन्मात्र, स्पर्शतन्मात्र, रूपतन्मात्र, रसतन्मात्र तथा गंधतन्मात्र) तथा अस्मिता रूप षट्पदार्थ इसके अविशेष पर्व हैं। इन अविशेष पंचतन्मात्र से ही पंचसहाभूतों का विकास होता है। आकाश अपेक्षाकृत सत्वगुण प्रधान है। अतः वह शान्त, लघु, सूक्ष्म तथा प्रसन्न है। प्रसादगुण विशिष्ट है।

—वायु एवं तेजः अपेक्षाकृत रजोगुण प्रधान होने के कारण घोर दुःखोत्पादक हैं। अस्थिर एवं क्रियाशील हैं। अप (जल) एवं पृथ्वी को तमोगुण वहुल होने के कारण मूढ़ (Inert), भावयुक्त तथा अप्रसन्न कहा गया है।

1. "In general, then, light, which consists of undulation of different wave lengths, produces different impressions upon our eyes namely, those of different colours".
—(Popular Lectures on Scientific Subjects, by Helmholtz p. 212)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वैज्ञानिक ग्लेजब्रुक कहते हैं—

"Thus, our experiment verify the anticipations of theory, and teach us that corrasponding to variations in wave lengths, we have variations in the sensations of colour which the light produces in our eye. Light of a definite wave length produces definite colour. The shorter waves produce the sensation of blue or voilet, coraespond to waves of intermediate lengths"

(Physical Optics, p. 110)

वैज्ञानिक पण्डित राबर्ट राटलेज अपने ग्रंथ Discoveries and Invention of the Nineteenth Centuary ग्रंथ में कहते हैं "The undulatary theory gives also an easy explanation of colours, they being, according to the theory, only the effects, as already stated, of the different rates of vibrations of the elher. If the other particles perform 5,4,000,000,000,000 oscillations in a second, we receive the impression we call red colour, if they execute 750,000,000,000,000,000 vibrations, the impression produced in our organ of sight is different we call it voilet, and so on- Thus science teaches us that visual impresson so diffrent as red, green, blue, voilet and other distinct colours are in reality, all due to movements of one and the same somthing; and that the different sensatinns of colour we experience, arise merely from different rates of recurrence in these movements"–(p.299)

अर्थात् आलोक के वीचिंतरंग न्याय से उत्पत्तिवाद (The undulatory theory) ने वर्ण तत्व का रहस्योद्भेदन सुखबोध्य कर दिया है। इस मतानुसार समस्त वर्ण ईथर नामक कल्पित पदार्थ के स्पन्दनक्रम तारतम्य से जात नयनेन्द्रिय ग्राह्य भिन्नातिभिन्न अनुभूतियाँ हैं। स्पन्दन के क्रमभेद से विभिन्न वर्णानुभव होता है। ईथरीय अणुराशि में यदि एक सेकेण्ड में ५१४०००,०००,०००,००० कम्पन होता है, उस अवस्था में हमें रोहितवर्ण की अनुभूति होती है। इसी प्रकार यदि एक सेकेण्ड में ७५०,०००,०००,०००,००० संख्यक कम्पन होता है तब उसमें पाटलवर्ण (voilet-colour) का अनुभव होने लगता है। अन्यान्य वर्ण समूह भी इसी प्रकार ईथरीय भेद के कारण भिन्नरूपेण प्रतीत होने लगता है। अतः एक पदार्थ के गतिभेद के कारण भिन्न-भिन्न चाक्षुष प्रप्यक्ष होता है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शास्त्र का कथन है कि वस्तुसमूह वर्णहीन नहीं है। जिसमें तेज व्यक्त अथवा अव्यक्त भाव से विद्यमान है, उसमें रूप है। पाश्चात्य विज्ञान के साथ यहाँ विरोध तथा विसंवाद लक्षित होता है। यह विरोध संन्धेय है (To be reconcilled) अथवा नहीं ? इस विसंवाद का सम्मेलन हो सकता है कि नहीं, यह जानने के लिये यह ज्ञात करना होगा कि आलोक क्या है ?

आलोक कौन पदार्थ है ?—आलोक (Light) के सम्वन्ध में पाश्चात्य विद्वानों में विभिन्न मत प्रचलित हैं। एक पक्ष का कथन है कि सूर्य, चन्द्र, स्थिर नक्षत्र (Fixed stars), प्रदीप, प्रभृति भास्वर पदार्थ से कर्मोत्पत्ति के नियमानुसार विरल अवयव (परस्परतः असपृक्त) तेजस अणुसमूह विकीर्ण होते रहते हैं। ये अणुसमूह जब हमारे नेत्रों से मिश्रित होते हैं, चाक्षुष स्नायु समूह को स्पर्श करते हैं, तब हमें आलोकानुभूति होती है। आलोक स्वयं भी द्रव्य (Matter) है। अन्य मत से शब्द के समान ही (वीचितरंग न्यायानुसार) आलोक की उत्पत्ति होती है। पुष्करिणीं में लोष्ठ निक्षेप करने पर, उससे अभिघात प्राप्त जलराशि में तरंगोत्पत्ति होती है। उसी प्रकार ईथर नामक पदार्थ से उत्पन्न इसी प्रकार की तरंगों को आलोक (Light) कहते हैं। इस मतानुसार आलोक तेजस अणु नहीं है। यह एक प्रकार की गति (wave motion) है। आलोक सम्वन्धित प्रथम मत को (तैजस तत्व प्रतिपादकमत) Emissive theory कहा जाता है। द्वितीय मत wave motion प्रतिपादकमत को undulatory Theory कहा गया है। द्वितीय मत के प्रति अव तक के वैज्ञानिक विद्वान् अत्यधिक आस्था का प्रदर्शन करते हैं।[1] जैसे आलोक के सम्वन्ध में दो मतों का प्रचलन है, उसी प्रकार ताप (Heat) के सम्बन्ध में भी मतद्वय प्रचलित हैं।

यह तथ्य शास्त्रज्ञों को अपरिचित नहीं है। अतः शास्त्र जिस प्रकार सुन्दर रूप से, असंदिग्ध तथा व्यापक रूप से इस तथ्य को समझाते हैं, उतने व्यापक रूप से तथा असंदिग्ध रूप से पाश्चात्य विज्ञान इसे नहीं समझाता।

(1) "Light was regarded by what was termed the corpuscular theory, as being in itself matter or a specific fluid emanating from luminous bodies, and producing the effects of sensation by impinging on the ratina. This theory gave way to the undulatory one, which is generally adopted in the present day, and which regards light as resulting from the undulation of specific

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विद्वान् गैनों कहते हैं कि एक प्रकार का सूक्ष्म, लघु, तरल पदार्थ (Subtle imponderable fluid) प्रत्येक जड़ वस्तु के अणुसमूह को आवेष्ठित रखता है। यह एक वस्तु से अन्य वस्तु में संचरण कर सकने में सक्षम है। यह आणविक आकर्षण तथा संहति को शिथिल रखता है। अर्थात् यह भेदवृत्तिक (Repulsive) है। इसके द्वारा पदार्थ (वस्तु) में प्रवेश को ताप तथा निष्क्रमण को शैत्यानुभूति का कारण कहते हैं। यह है तापोद्भूति सम्वन्धित प्रथम मत। जड़ वस्तु के परमाणुओं में विकम्पन से ताप उद्भूत होता है। आणविक तरंग ही तापोद्भूति का कारण है। जिस वस्तु का आणविक विकम्पन अतिमात्र वेगयुक्त है, वह वस्तु ही अत्युष्ण है। यह ताप का द्वितीय मत है। इस मत से यह ज्ञात होता है कि ताप द्रव्य नहीं है। यह द्रव्य की अवस्था विशेष (A condition of matter) है। इस द्वितीय मत का (उर्मि के समान वाले उत्पत्तिवाद (uudulatory theory) का) भी प्रकार भेद प्राप्त होता है।

जो घनिष्ठ (The densest) अथवा अत्यन्त स्वच्छ कठिन पदार्थ, तरल एवं सूक्ष्मतम वायवीय पदार्थ (The most attenuated gases) और नक्षत्रमण्डल का आवेष्ठन करते हुये विद्यमान है, वह आन्दोलित गति को अत्यन्त वेग के साथ संचालित कर सकता है। स्थिति स्थापक धर्मयुक्त "ईथर" नामक पदार्थ की द्रुत, आन्दोलित गति अथवा प्रकम्पन से ताप की उद्भूति होती है। ताप की उत्पत्ति से सम्बन्धित यह मत आजकल प्रसिद्ध वैज्ञानिकों द्वारा समादृत है।[1]

---

fluid to which the name of the Ether has been given which hypothetic fluid is supposed to pervade the universe, and to permeate the pores of all bodies."

—(Correlation of Physical Forces, by Grove, P. 129)

(1) " Of the various theories as to the cause of heat, two only need be mentioned: these are the theory of emissions, and the theory of undulation. On the first view, heat is caused by a subtle imponderable fluid, which surroundes the molecules of bodies and which can pass from one body to another These heat atmospheres which thus surrounds the molecules, exert a repelling influence on each other, in consequence of which heat acts in opposition to the force of cohesion. The entrance of this substance into our bodies produces the sensation of

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विद्वान थामसन (Thomson) का कथन है कि आंग्लभाषा में "ताप" शब्द दो अर्थों का बोध कराता है। वह कभी इन्द्रिय द्वार से उत्पन्न अनुभूति विशेष का कारण है, तो कभी इतःस्ततः विद्यमान पदार्थ समूह की तापानुभवोद्दीपक अवस्था विशेष के रूप में प्रयुक्त होने लगता है। "हम ताप का अनुभव करते हैं," यह इसका प्रथमोक्त अर्थ है। "अग्नि में ताप है," यह इसका द्वितीय अर्थ है।[1]

शुद्ध ईथर से आलोकादि भौतिक शक्ति समूह की उत्पत्ति के सम्बन्ध में मतभेद—वैज्ञानिक ग्रोव कहते हैं कि भौतिक पदार्थ परिवेष्ठित ईथर से आलोक की उद्भूति होती है। इसकी अपेक्षा यह मत अधिक ग्राह्य प्रतीत होता है कि आलोक

---

warmth; its egress the sensation of cold. On the second hypothesis the heat of a body is caused by an osciliating or vibratory mation of its matarial particles, and the hotest bodies are those in which the vibrations have the greatest velocity and the greatest amplitude. Hence, on this view, heat is not a substance, but a condition of matter, and a condition which can be transferred from one body to antoher. It is also assumed that is an impouderable elastic ether which pervades all bodies 'the densest, or the most transparent solids or liquids, the most attenuated gases as well as the stellar spaces, and which is capable of transmitting a vibratory motion with great velocity. A rapid vibratory motion of this ether produces heat, just as sound is produced by a vibratory motion of atmospheric air, and the transference of heat from one body to another is effected by the intervention of this ether."

(1) "The word heat in the English language is used to express two different things. It sometimes signifies a sensation excited in our organs and sometimes a certain state of bodies around us, in concequence of which they exited in us that sensation. The word in used in the first sense when we say that we feel heat, and in the second when we say that there is heat in the fire" —(T. Thomson's Heat and Electricity, P. 3)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भौतिक पदार्थ की ही आणविक तरंग से समुत्पन्न होता है। प्रसिद्ध गणितज्ञ ग्रूलर इसी मत का प्रतिपादन करते हैं।[1]

विद्वान ग्रोव के सिद्धान्त की युक्ति

यह पूर्वकथित है कि ताप, तडित्, आलोक प्रभृति के प्राकृतिक पारस्परिक सम्वन्ध की खोज (Correlation of Physical Force) का श्रेय विद्वान् ग्रोव को है। वे कहते हैं कि "पृथक् रूप से अवभासमान प्राकृतिक शक्तिसमूह के अन्योन्य सम्वन्ध को देखकर यह ज्ञात है कि वह एक मूल पदार्थ का भिन्न-भिन्न परिणाम हैं। यह मेरे सिद्धान्त की प्रधानतम युक्ति (Cogent Argument) है।" क्या यह एक पदार्थ जो ताप, तडित् प्रभृति का मूल कारण है, वह ईथर (Ether) है? जिनका यह सिद्धान्त है कि ईथर के कम्पन विशेष से आलोक की उद्भूति होती है उनसे यह जिज्ञासा है कि क्या ताप आदि पदार्थ भी उसी कम्पन विशेष से विकसित होते हैं? ग्रोव का कथन है कि "ईथर के कम्पन विशेष से आलोक उद्भूत होता है" इस सिद्धान्त की अपेक्षा अन्य सिद्धान्त अधिकतर आपत्ति पूर्ण सिद्ध होते हैं। अन्य सिद्धान्त की अवाधित उपपत्ति का प्रदर्शन नहीं किया जा सकता।[2]

तड़ितात्मक (Electric) अथवा अतड़ितात्मक ताड़ितेतर (Non-Electrie) रूप द्विविध पदार्थ से अब पाठकगण अवगत हो चुके हैं। ताड़ितात्मक वस्तु-

---

(1) "In a lecture delivered, in Jan-1842, when I first publicly advanced the views advocated in this essay, I stated that it appeared to me more consistent with known facts to regard lights resulting from a vibration or motion of the molecules of matter itself, rather than from a specific ether pervading it, just as sound is propagated by the vibrations of wood or as waves are by water"—(Correlation of Physical Forces, P.129)

(2) "The fact itself of the Correlation of the different modes of force is to my mind a very cogent argument in favour of their being affections of the same matter and though electricity, magnetism and heat might be viewed as produced by undulations of the same ether as that by means of which light is supposed to be produced, yet this hypothesis offers greater difficulties with regard to the other affections than with regard to light." --(Correlation of Physical Forces, P. 130)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

समूह तड़ित् प्रवाह रोधक (Non-Conductors) है और तड़ितेतर (Non-Electric) द्रव्यसमूह तड़ित् परिचालक (Conductors) होता है। विद्वान ग्रोव कहते हैं कि यदि ईथर से तड़ित् प्रस्तुत होता है, उस स्थिति में यह पूछता हूँ कि ईथर तड़ित् परिचालक है अथवा तड़ित् प्रवाह रोधक है ? यदि वह तड़ित् प्रवाह रोधक है, तब ईथरीय सिद्धान्त (Ethereal Hypothesis) असिद्ध हो जाता है। यदि ईथर ही तड़ित् परिचालक है, तब जो पदार्थ ईथर के लिये अधिक अनुप्रवेशार्ह हैं वे ही उत्तम तड़ित् परिचालक होते, परन्तु ऐसा नहीं होता।[1] डा० युंग (Dr. Young) पहले शुद्ध ईथरीय सिद्धान्त के पक्षपाती थे, किन्तु पश्चात् काल में उन्हें स्वमत का परिवर्तन करना पड़ा। उन्होंने अन्त में यह स्वीकार किया कि ईथरीय अवकाश तथा भौतिक अणु, दोनों ही ताप, तड़ित् तथा भौतिक शक्तियों के विकास के कारण हैं। यह भी कहते हैं कि तैल द्वारा आलेखन पत्र (Tracing paper) का जो कार्य सिद्ध होता है (अर्थात् तैल लगाने से ही ट्रेसिंग पेपर बन जाता है) वही कार्य ईथर नामक पदार्थ के द्वारा आणविक तरंग प्रवाह में सम्पादित किया जाता है। यह ईथर स्थिति स्थापक है। निखिल जड़ वस्तु समूह को आवेष्ठित करके स्थित है।[2]

---

1. "Assuming ether to prevade the pores of all bodies, is the ether a conductor or non conductor ? If the later that is, if the ether be incapable of transmitting the electrical wave the etheral hypotheses of electricity necessarily falls, but if the motion of the ether constitute what we call conduction of electricity, then the more porous bodies, or these most premeable by the ether, should be the best conductors. But this is not the case"
—(Correcation of Physical Forces, p. 105)

2. "Dr. Yong ultimately came to the conclusion that it was simplest to consider the etheral medium, together with the materi-al alones of the subtance, as constituting together a compound medium denser than pure ether, but not more elastic. Ether (Says Dr. Young) might thus be viewed as performing the functions which oil does with tracing paper, giving continuity to the particles of gross matter and in the interplanetary spaces forming itself the medium which transmits the undulation".
(वही, पृ० 137)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शब्द तथा आलोक में अनेक सादृश्य (Analogies) है। विरुद्ध शक्ति के द्वारा वाधित न होने पर, (रोके न जाने पर) दोनों ही सरल रेखा में प्रवाहित होते हैं। शब्द तथा आलोक का आघात तथा प्रतिफलन कोण (The Angles of incidence And reflection) समान है। दोनों के अवरोध का प्रावल्य पर्यायक्रम से अपेत तथा वर्धित (Nullified And Doubled) होता रहता है। एक अवकाश से अवकाशान्तर में जाते समय (दोनों ही) अवकाश के घनत्व के अनुसार वक्रीभूत तथा परावृत्त (Refracted) होते हैं। अब यह शंका होती है कि यदि शब्द तथा आलोक की गति आन्दोलायित होती है, यदि दोनों ही शक्ति विशेष हैं, उस स्थिति में दोनों में इतनी विभिन्नता, वैसादृश्य का अनुभव क्यों होता है। यह भी जिज्ञासा होती है कि ईथर को शब्दोत्पत्ति का कारण क्यों नहीं कहते ?"

यदि हम ईथरीय कम्पन से शब्दोत्पत्ति के सिद्धान्त को अस्वीकार कर देते हैं, उस स्थिति में एक मूल पदार्थ से निखिल प्राकृतिक शक्तियों के विकास सिद्धान्त की सार्वभौमिकता कैसे उत्पन्न होगी ?[1] विद्वान् ग्रोव ईथर के प्रकम्पन से आलोक

---

1. "The analogies in the progressin of sound and light are very numeros, each proceed in straight lines, until interrupted, each is reflected in the same manner, the angles of incidence and reflection being equal; each is alternately nullified and doubled in intensity by interference, each is capable of reflection when passing from media of different density." (वही, पृ० 132)

"How does the wave theory account for this, the rectilinear propagation of light ? Why does not the light bend round corners as a sound does ? A beam of light coming through a hole in the shutter in a darkened room casts a bright spot of light on the opposite wall and leaves the rest almost as dark as before, while a sound made outside is heard almost equally well at all points in the room. If the two—the light and the sound are both forms of energy, transmitted by wave motion, how is it that there is this great difference ? Hyghens, the real founder of the undulatory theory, failed to explain this, and it was Newton's great objection. It was this difficulty which led him to espouse so warmly the cause of the emission theory"—

(Physical Optics by R. T. Glaze-Brook, p. 15)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उत्पत्तिवाद की अनुपपत्ति का प्रदर्शन करते हुये अपने में इसी प्रकार के विविध तर्कों को प्रस्तुत करते हैं। उनका कथन है कि अधिकांश सान्तर अथवा सच्छिद्र वस्तु समूह अस्वच्छ (Opaque) है। (कार्क Cork), चारकोल (Chorcol), अंगार, (दग्धकाष्ठ), शुष्क एवं आर्द्र काष्ठ (Dried and moist wood) इत्यादि। अतः यह विदित होता है कि उक्त वस्तु समूह अत्यन्त सच्छिद्र तथा लघु रूप हैं। अतः वे Opaque हैं। जो कहते हैं कि आलोक स्थूलवस्तु समूह में व्यापक (Pervading gross matter) ईथर नामक पदार्थ द्वारा उद्भूत् आन्दोलायित गतिरूप है, वे वस्तुओं के अणु परमाणु (molecules or atoms of matter) के पारस्परिक परविप्रकर्ष की कल्पना करते रहते हैं। इनके अनुसार वस्तुओं के अणु पारस्परिक रूप से अत्यन्त दूरवर्ती हैं। प्राचीन काल के वैज्ञानिक द्विमोक्रेटस (Dimocritus) तथा अनेक आधुनिक दार्शनिकगण मैटर की तारांकित गगन (Starry Firmament) से तुलना करते हैं। यद्यपि प्रत्येक परमाणु (द्रव्य का कल्पित अभेद्य सूक्ष्म अंश) पारस्परिक रूप से अत्यन्त विप्रकृष्ट हैं, तथापि वे समूढावस्था में अभिन्न तथा एक रूप से उपलब्ध हैं और आणविक आकर्षण शक्ति के द्वारा स्व-स्व स्थान में परस्पर निर्दिष्ट स्थिति में स्थित रहते हैं। यदि मैटर भिन्न-भिन्न अणु समूह के संयोग से निर्मित होते, उस अवस्था में हम यही कह सकते हैं कि (उन-उन द्रव्यों के घटकावयव के अणुपुंज परस्पर परविप्रकृष्ट होने के कारण) वे परम लघु हैं। इसी प्रकार जिन द्रव्यों की रचना विप्रकृष्ट अणुपुंज से हुई है (उनमें द्रव्यावगाही ईथर का आन्दोलायित प्रवाह जितनी ही अल्पमात्रा में संघर्षित अथवा अवरोधित हुआ) वे द्रव्य उतनी ही अधिक मात्रा में स्वच्छ तथा किरणभेद्य (Transparent) होते हैं।[1]

---

1. "An objection that immediately occurs to the mind in reference to the etherial hypothesis of light, is, that the most porous bodies are opaque, Cork, Charcoal, pumice stone, dried and moist wood, all are very porous and very light, are all opaque. This objections is not so superfical as it might seem at first sight. The theory which assumes that light is an undulation of the etherial medium pervading gross matter, assumes the distance between the molecules or atoms of matter to be very great. Matter has been likened by Democrats, and by many modern philosophers, to the starry firmament, in which, though the indivldual monads are at immense distances from each other, yet

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ताप द्वारा जितनी भी प्राकृतिक घटनायें संघटित होती हैं, उनकी परीक्षा शक्तिवाद दृष्टिकोण द्वारा करने पर (viewed according to the dynamic theory) यह ज्ञात होता है कि शुद्ध सूक्ष्म ईथर नामक पदार्थ के परिस्पन्दन को उनका कारण मान लेने पर समीचीन कारणोपलब्धि नहीं होती। ईथरीय सिद्धान्त पर्याप्त रूप से उनके कार्यतत्व की व्याख्या कर सकने में अक्षम रहता है। अतः इस सिद्धांत को भौतिक पदार्थ रूप आणविक क्रिया समूह जनित सिद्धांत की मुखापेक्षा करनी पड़ती है। जो ताप के गतिवाद तथा शक्तिवाद का प्रतिपादन करते हैं, वे यह स्वीकार करते हैं कि प्रायः सभी भौतिक पदार्थ के आन्दोलन से स्पन्दन का प्रसारण होता है। ताप एवं आलोक की कार्यगत समानता (Analogies) जब इतनी अधिक है, तब हम यह नहीं समझ पाते कि संगत रूप से स्वीकृत एक का कारणवाद उसी जाति के अन्य पदार्थ के सम्बन्ध में संगत क्यों नहीं होगा ?

ताप का संचारण (Transmisson), प्रतिफलन (Reflection), प्रतिभंग (Refraction) तथा ध्रुवाभिसरण (polarization) प्रसिद्ध भौतिक पदार्थों के विकार रूप में परिदृष्ट होता है। दूसरी ओर ताप के समान उसी धर्म गुण युक्त आलोक से सम्बन्धित पूर्वकथित संचरण प्रभृति व्यापार समूह भौतिक पदार्थ के विकार नहीं हैं। वे हैं ईथर नामक सूक्ष्म पदार्थ के परिणाम। इस प्रसंग में यह जिज्ञासा होती है कि इस सिद्धांत की युक्ति क्या है ? ताप विकार के समान आलोक परिणाम को भी प्रसिद्ध भौतिक पदार्थ के कारण रूप में मान लेने के विरुद्ध क्या आपत्ति है ?[1]

---

they have in the agreegate a character of unity and are firmly held by attraction in their respective positions and at definite distances. Now if matter be built up of seprate molecules, then as far as our knowledge extends, the lightest bodies would be those in which any undulation of a pervading medium would be the least interfered with by the separated particles, such bodies should consequently be the most transparent."

—(Correlation of Physical Forces, p. 134)

1. "The phenomena presented by heat, Viewed according to the dynamic theory cannot be explained by the motion of an imponderable ether, but involve the moleculor actions of ordi-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पाश्चात्य रासायनिक विद्वान कुक (coke) अपने ग्रंथ The New Chemistary में स्पष्टत: स्वीकार करते हैं कि आलोक आन्दोलायित गतिवाद को जो विज्ञान का प्रतिष्ठित तत्व (Established principle of Science) मानते हैं, मैं उनसे एकमत नहीं हूँ। मैं यह मुक्तकंठ से स्वीकार करता हूँ कि यह एक अत्यन्त मूल्यवान सिद्धान्त है। तथापि पक्षान्तर से यह भी कहता हूं कि आलोक की आन्दोलायित गतिवाद से उत्पत्ति के सिद्धान्त में भी ईथर नामक पदार्थनिष्ट गुणसंघात अपेक्षित है। आलोक के आन्दोलायित गतिवाद में यह यथायथरूप से प्रत्यक्षीभूत हो जाता है। आन्दोलायित गतिवाद मानने वालों को यह बात मान्य होगी, इसमें मुझे शंका है।

शब्द तथा आलोक, दोनों ही आंदोलयित गति (wave motion) हैं। आंदोलन अथवा प्रकम्पन का उत्पत्ति कारण भी दोनों में समान हैं। शब्द वेग से संचरण करता है, परन्तु आलोकाख्य आंदोलायित गति का वेग उसकी तुलना में अत्यधिक है। पाश्चात्य विद्वान् गणना के द्वारा यह स्थिर करते हैं कि शब्द समूह वायुराशि के मध्य से होकर प्रति सेकेण्ड 1100 फीट जाता है।

---

nary ponderable matter. The doctrine of propagation by undulations of ordinary matter is very generally admitted by those who support the dynamical theory of heat, but the analogies of the phenomena presented by heat aud light are so close, that I can not see how a theory applied to the one agent should not be applicable to the other When heat is transmitted, rflected, refracted or polarised, can we view that as an affection of ordinary matter, and when the same effects take place with light, view the phenomenon as produced by an impondorable ether, and hy that alone ?"— (Correlation of Physical Forces, p 133)

विद्वान् गैनों (Ganot) कहते हैं—"The reflection of Sound or rather of Sound waves follows the same laws as the reflaction of heat and of light, which we shall afterwards have to explain"— (The Natural Philosophy, p. 166)

अर्थात् शब्दाख्य आन्दोलायित गति का प्रतिफलन नियम एवं ताप तथा आलोक का प्रतिफलन नियम समान है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आलोक की आन्दोलायित गति प्रति सेकेण्ड[1] 1,86000 मील है। अतः आलोक की गति शब्द की तुलना में अत्यन्त अधिक सिद्ध हो जाती है। शब्द की गति का वेग भी संचारण मार्ग भेद के कारण भिन्न-भिन्न हो जाता है। शब्द वायु के भीतर से होकर जिस गति से गमन करता है, तदपेक्षा तरल पदार्थ में होकर जाते समय उसकी गति बढ़ जाती है। कठिन पदार्थ के मध्य से होकर उसका वेग और भी बढ़ जाता है।[2] विद्वान् कुक ने आंदोलायित गति समूह को इस प्रकार का इतरव्यावर्त्तक धर्म स्थिर किया है कि आलोक का कारण एकमात्र शुद्ध ईथरीय प्रकंपन ही नहीं है।[3]

---

१. शब्द तथा आलोक वर्ग के सम्बन्ध में (Velocity of Sound and light) पाश्चात्य विद्वानों में पारस्परिक मतभेद है। इसे यथासमय प्रदर्शित किया जायेगा।

2. "That sound travels more rapidly in solids than in air is easily shown. If a person holds his ear against one end of a tolerably long iron bar, while another person gives a hard blow at the other end, two distinct sounds are heard, the first transmitted by the metal, and the other transmitted by the air. The velocity of sound in iron is 16800 feet in a second, in copper 11-600, in oak 1090., and in pine 15220 feet.

(Natural Philosophy by Ganot, p. 166)

अर्थात् शब्द वायुराशि के मध्य से होकर जिस वेग से संचरण करता है, कठिन वस्तु के मध्य वह उसकी अपेक्षा द्रुतवेग से गमन करता है।

3. "Indeed, I cannot agree with those who regard the wave theory of light as an established principle of science. That is a theory of the very higest value I freely admit, and that it has been able to predict the phrase of unknown phenomena, which experiment has subseqnently brought to light, is a well known fact. All this is true, but then, on the other side, the theory requires a combination of qualities in the ether of space, which I find it difficult to believe are actually realized. For instance, the rapidity with which wave—motion is transmitted depends other things being equal, on the elasticity of the medium".

(The New Chemistary, p. 14)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस सम्बन्ध में शास्त्र क्या कहते हैं ?

ताप आलोक इत्यादि भौतिक पदार्थ के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों में शक्तिवाद (Dynamical Theory) तथा परमाणुवाद (Corpuscular Theory)[1] प्रचलित हैं। यद्यपि ये दोनों मत प्रचलित अवश्य हैं, तथापि काल विवेचना से यह ज्ञात होता है कि शक्तिवाद अधिक आधुनिक है। विद्वान् सर आइजक न्यूटन के समय में भी यह सिद्धांत प्रचलित नहीं था। क्या उक्त दोनों वादों का अंकन शास्त्रों में भी है ? इसका उत्तर यही है कि शास्त्रों में इन वादद्वय का अंकन है। यह भी कहना आवश्यक है कि शास्त्रमें जिस रूप से इन मतद्वय की व्याख्या प्रस्तुत है, वह असंदिग्ध, सारगर्भित, विश्वतोमुखी तथा अनवद्य है। शास्त्र पाठ से विहीन पाश्चात्य गण, पाश्चात्य विद्या पक्षपाती लोग मेरी बात से संतुष्ट नहीं हो सकते। यहाँ तक कि पाश्चात्य भाषा ज्ञान से रहित शास्त्र व्यवसायी स्वदेशी विद्याभिमानी लोग भी मेरी बातों को हास्यास्पद ही मानेंगे, तथापि मुझे जो कुछ तथ्य कहना है, वह अवश्य कहूँगा।

हम इस समय सुदूरवर्ती, भिन्न प्रकृति, भिन्न भाषी, अत्युदयशील इंगलैण्ड के अधीन हैं। शौर्यगुण भूषित, प्रबल प्रतापान्वित, विद्याविवर्धन निरत, सुसभ्य

---

1. "Corpuscular" शब्द Corpuscle से उत्पन्न है, अर्थात् क्षुद्रावयव अणु, Minute partical or physical atom. अत: मैं Corpuscular Theory को परमाणुवाद कहता हूँ। इसका अन्य नामांतर Emisson Theory भी है। विद्वान् ग्लेजब्रुक (Glaze Brook) इस वाद के प्रदर्शनार्थ कहते हैं कि "A luminous body may be considerd as a source of energy emitting in all direction a number of material particles which travel through space with a definite velocity, and carry with them their kinetic energy; endowed also, it may be, with potential energy from the forces which they exert on each other and on other forms of matter. We must further suppose that when these particles come in contact with the retina they give rise to the sensation of vision. This is the basis of the Emission Theory, which was elaborated at length by Newton, and by means of which he was enabled to explain the phenomena of the rectitiliner transmission, reflection and refraction of light'.

(Physical Optics, p. 4-5)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अंग्रेज आजकल भारतवर्ष के शासक हैं। राजभाषा, राजनीति, राजमुखापेक्षी प्रजा-वर्ग के लिये ज्ञातव्य विषयरूप है। अतः उनकी भाषा का ज्ञान हमारे लिए आवश्यक है। भगवान आत्रेय कहते हैं—जिनका मन, बुद्धि, पौरुष, पराक्रम अनुपहत है, अविकलीकृत है uuimpaired है, जो इहलोक तथा परलोक रूप द्विविध लोक की समान रूप से कामना करते हैं, उनमें प्राणैषणा·यशैषणा, तथा परलोकैषणा रूप ऐषणा (Seeking Desire) होती है।

प्राणों के स्वास्थ्य से, शरीर-मनः के आरोग्य से, शरीर स्वस्थ रहता है और इसी स्थिति में कार्य निष्पादन का सामर्थ्य भी होता है। प्राण त्याग होते ही सर्व-त्याग हो जाता है।, अतः प्राणैषणा ही सबसे प्रधान है। स्वस्थ की स्वस्थ वृत्ति है स्वास्थ्य रक्षण (Preservation of Health) तथा व्याधि के विकार प्रशमन में अप्रमाद, अवधान (Care, Attention), रोग विमोचन में मनोयोग, यही प्राणैषणा का रूप है। प्राण बच जाने के अनन्तर धनैषणा ही पर्येष्टव्य (To be sought for) है। कृषिकर्म, पशुपालन, वाणिज्य, राजसेवा अथवा कोई कार्य जो साधुमार्ग प्रदर्शित हो, जिसके द्वारा सुख पूर्वक जीवन यापन हो सके, वैसा धनार्जन द्वितीय ऐषणा है। प्राणैषणा तथा धनैपणा के पश्चात् हिताहित विवेकक्षम, लोकालोकदर्शी व्यक्ति को परलोकैपणा होती है। वे परलोक की हितकामना करते हैं। परलोक के अस्तित्व में सबको विश्वास नहीं है। जो प्रत्यक्षवादी हैं,[1] अविवेकी हैं, संसारावद्ध दृष्टिकोण के कारण जागतिक भोगैश्वर्य प्रसक्त हैं, जो वित्तमोह विमूढ़ हैं, वे पुनर्जन्म स्वीकार नहीं करते।[2] अतः उनकी दृष्टि में परलोकैषणा की सत्ता नहीं रहती। अतः प्राणैषणा एवं धनैषणा के सम्वन्ध में सभी एकमत हैं।

---

1. कठोपनिषद् में उक्त है कि जो मनुष्य बालक बुद्धि, अविवेकी है, प्रमादी है, पुत्र-पश्वादि प्रयोजनासक्त चित्त है, जो वित्तमोह से मुग्ध है, वह प्रत्यक्ष प्रमाणसिद्ध इहलोक को ही सत्य मानता है। उसकी दृष्टि में परलोक तो कवि कल्पना मात्र है। ऐसे अभागे मनुष्यवृन्द चिरकाल पर्यन्त मायावद्ध रहते हैं। यह यम का उपदेश है। यमराज कहते हैं—हे नचिकेता ऐसे व्यक्ति पुनः-पुनः मेरे करालपाश में आवद्ध होकर अविराम इस भवसागर में उन्मज्जित निमज्जित होते रहते हैं। यातनाभोग करते रहते हैं।

2. "इह खलु पुरुषेणानुपहतसत्वबुद्धिपौरुषपराक्रमेण हितमिह चामुंस्मिश्चलोके समनुपश्यता तिस्त्र एषणा पर्येष्टव्या भवन्ति। तद्यथा। प्राणैषणा धनैषणा पर-लोकैकपणेति।················अथ तृतीयां परलोकैषणामापद्येत् (चरक संहिता, सूत्रस्थान)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बिना प्रयोजन कोई भी किसी कर्म में प्रवृत्त नहीं होता। प्रयोजन बोध ही कर्म प्रवृत्ति का कारण है। राजभक्तिवशत: अथवा मानवोचित ज्ञानपिपासा शान्ति के लिए इस दुर्दिन में कौन पढ़ता है? जो भी पढ़ रहा है वह वृत्ति के लिए, दग्ध उदर की पूर्ति के लिए ही राजभाषा अंग्रेजी का अध्ययन कर रहा है। जब हम प्राणैषणा तथा धनैषणा के वशीभूत होकर ही विद्याभ्यास कर रहे हैं, जब विद्या के लिए विद्याभ्यास हमारा प्रयोजन ही नहीं रहा है, तब हम शास्त्र अध्ययन को बेकार का कार्य ही मानते हैं। जो निरवच्छिन्न शास्त्राध्ययन करते हैं, जो राजभाषाभिज्ञ नहीं हैं, विश्वविद्यालय की परीक्षा में उत्तीर्ण होकर जिन्होंनें कोई उपाधि प्राप्त नहीं किया है, उनकी जीवनयात्रा सरलता से सम्पन्न नहीं हो सकती। शुद्ध संस्कृतज्ञ, यथासंभव स्वधर्मपालनरत, सरलचित्त ब्राह्मण विद्वानों के प्रति इस देश में किसी का भी आदर भाव नहीं हैं। इस समय सामान्य स्कूली शिक्षा प्राप्त व्यक्ति भी शास्त्रपारदर्शी, शिखा सूत्रधारी प्रवीण ब्राह्मणों को असभ्य, बर्बर कहकर उपेक्षित करते रहते हैं।

शुद्ध शास्त्रों के अध्ययन से अब किसी की भी लौकिक ऐषणा चरितार्थ नहीं होती। सुखपूर्वक जीविका निर्वाहित नहीं होती। यश सम्मान भी प्राप्त नहीं होता। अत: अब शास्त्र अध्ययन के प्रति रुचि का अभाव होना स्वाभाविक सा है। यदि अंग्रेजों में संस्कृत ग्रंथों के प्रति जिज्ञासा न होतीं, उस स्थिति में आज संस्कृत भाषा का अध्ययन एवं अध्यापन भी बन्द हो जाता। अब शास्त्रचर्चा यथायथ रूप से नहीं हो रही है, उपयुक्त आचार्य विरल होते जा रहे हैं, अधिकांश शास्त्र भी विलुप्त एवं विनष्ट होते जा रहे हैं। अत: शास्त्र में क्या है, और क्या नहीं है, इसका निर्णय कर सकना भी दु:साध्य हो चला है। पाश्चात्य विद्वानों द्वारा विरचित ग्रन्थों के अध्ययन से विस्मयाविष्ट चित्त होकर जो यह प्रश्न करते हैं कि क्या शास्त्रों में ऐसा है? मैं उनसे विनीत भाव से पूछता हूँ कि वे शास्त्र का क्या अर्थ समझते हैं? वे शास्त्र की सीमा कहाँ तक समझते हैं? शास्त्र अध्ययन से यह ज्ञात हो सका है कि वेद ही अन्यान्य शास्त्रों का उत्पत्तिस्थल है। समस्त विद्यासमूह वेदपाद सम्भूत है। आज हमारे देश में वेद सेवा का पूर्ण अभाव हो चला है। काशीधाम तथा दक्षिण में वेद की किंचित चर्चा अवश्य होती है, तथापि शास्त्र में जिस प्रकार से वेदाध्ययन का उपदेश अंकित है, उस रीति से आज वेदों का अध्ययन नहीं हो रहा है। इसी कारण वेदों के वास्तविक फल की प्राप्ति नहीं हो रही है।

वेद का स्थूल रूप भी विलुप्त प्राय: है

इस वाक्य को पढ़कर यह जिज्ञासा होगी कि वेदों का स्थूल-सूक्ष्मरूप क्या है? अत: इसकी विवेचना आवश्यक है। चन्द्रतारक के समान प्रवाहरूप नित्य वाक्

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

समाम्नाय ही वेद अथवा ब्रह्म है। विश्व जगत् शब्दब्रह्म का ही परिणाम है। अनादिनिधन शब्दब्रह्म ही जगदाकृति में विवर्त्तित होता है।

ऋग्वेद संहिता के अनुसार [२।३।२२] परा, पश्यन्ति, मध्यमा, वैखरी रूप चतुर्विध अवस्था, चतुर्विध पर्वा तुरीय अथवा वैखरी वाक ही मनुष्य लोक में प्रचलित है। शब्द की परा, पश्यन्ति, तथा मध्यमारूप अवस्थायें गुहा निहित हैं, ये साधारण मनुष्यों के लिए अज्ञेय हैं। केवल मात्र योगनेत्रों के द्वारा अनुभूत होती हैं। वैखरी वाक् ही इन्द्रियग्राह्य निखिलविश्वरूपा है। यही विराट है।[1] "यही विराट है" इसकी तात्पर्योपब्धि अत्यन्त कठिन है। शब्द क्या है? शब्द घात प्रतिघात जनित, वायुकर्त्तृक आर्या श्रोत्रेन्द्रिय गृहीत मन द्वारा उपलब्ध आन्दोलायित गति अथवा तरंग-विशेष है, यह विज्ञान की परिभाषा है। 'अतः वैखरी शब्द ही विश्वरूप है। विराट् [The whole Kosmos in its objective form] है। इसे कैसे हृदयंगम किया जाये?

"वैखरी वाक् ही विश्व है" इसके अर्थ प्रकाशनार्थ यह कहा जा सकता है कि साईन्स के अनुशीलन द्वारा—दर्शनशास्त्रोपदेश द्वारा— अपनी युक्ति तथा विचार के द्वारा विश्व के इन्द्रियग्राह्य स्वरूप का जो निरूपण किया जाता है, सबसे पहले उसे समझ लेना चाहिये। वैज्ञानिक तथा दार्शनिकगण परमाणु [Atom], शक्ति [Force], गति [Motion], आकर्षण-विकर्षण [Attraction and Repulsion], स्थूलाकाश [Ether], भूत-भौतिक शक्ति [Matter-Energy], तड़ित् [Electricity], ताप [Heat], आलोक [Light], विकिरण [Radiation], परिपोषण [Absorption], प्रतिफलन प्रतिभंग [Reflection, Refraction] ध्रुवाभिसारण [Polarization], अव्यपदेश्य या संचयी धर्म, उदित अथवा क्रियमाण धर्म [Potential and kinetie Energy][1], नपुंसकत्व, शक्तिसंरक्षा—

---

1. "तस्माद्विराड्जायत विराजो अधि पूरुषः"—[पुरुषसूक्त]
अर्थात् सर्व वेदान्तवेद्य पुरुष अथवा परमात्मा स्व-माया के द्वारा विराड्देह ब्रह्माण्ड की सृष्टि करता है और उसमें प्रवेश करके ब्रह्माण्डाभिमानी जीवरूप हो जाता है। "विविधानि राजन्ते वस्तुन्यत्रेति विराड्" [सायणभाष्य] 'वि' पूर्वक 'राज' धातु के उत्तर में क्लिप् प्रत्यय करने से विराड् पद सिद्ध होता है। जिसमें विविध वस्तु विराजित है, वह विराड् है।

1. Conservation of Energy इस संज्ञा का अनुवाद करते समय नपुंसकत्व शब्द का प्रयोग नवीन प्रतीत होगा। पूज्यपाद भगवान पतंजलिदेव ने पूल्लिग, स्त्री-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(Conservation of Energy) मन, (Mind), मनोवृत्ति (Consciousness) दुर्भेद्यरहस्य (Mystry) प्रभृति शब्दों का प्रयोग करते रहते हैं। शास्त्र सर्वदर्शी हैं, वे स्वल्प तथा सारभाषी हैं। अतः शास्त्र कहते हैं कि समस्त सूक्ष्म एवं स्थूल पदार्थ, चैतन्याधिष्ठित भेदसंसर्ग वृत्तिक शक्ति, माया अथवा परमाणु के परिणाम हैं। शब्दब्रह्म के विवर्त्त हैं। शब्द परमाणु है। वह त्रिगुण, शक्ति, शक्तिमान्, जड़, चैतन्य, नित्य तथा कार्य है। अतः व्यक्त शक्ति ही इन्द्रियग्राह्य विश्व है। इस कथन से तथा "वैखरी वाक् ही जगत् है" इस वाक्य में कोई प्रभेद नहीं है।[1]

लिंग तथा नपुंसक लिंग के स्वरूप निर्देशन के समय कहा है "यावदनेन वर्द्धित-व्यमपायेन वा युज्यते। तच्चोभयं सर्वत्र। ···· संस्त्यानविवक्षायां स्त्री। प्रसव-विवक्षायां पुमान्। उभयविवक्षायां नपुंसकम्।"—(महाभाष्य) पूज्यपाद कैयट इसका भाष्य करते समय कहते हैं—

"आविर्भावतिरोभावान्तरालावस्था स्थितिरुच्यते सा च नपुंसकत्वेन व्यवस्थाप्यते"—(महाभाष्यप्रदीप) अर्थात्—आविर्भाव एवं तिरोभाव की अन्तरालावस्था को स्थिति कहते हैं। यह स्थिति ही नपुंसकत्व है। वास्तव में शक्ति की क्षय अथवा वृद्धि नहीं होती। इसी अर्थ में वैज्ञानिक विद्वान् Conservation of Energy शब्द का व्यवहार करते हैं। विद्वान् Helmholtz कहते हैं "The law in question asserts, that the quality of force which can be brought into action in the whole of nature is unchangeable and neither be increased nor diminished"

—(Popular Lectures in Scientific Subjects, Vol I, p 280)

विश्व का नपुंसकत्व ही स्थिति अथवा शक्ति की रक्षा है। पूज्यपाद भर्तृहरि के उपदेशानुसार प्रकृति त्रिविधात्मिका है। प्रवृत्ति शब्द को आविर्भाव, तिरोभाव तथा स्थिति की संज्ञा कहते हैं। वास्तव में शक्ति में ह्रास अथवा वृद्धि होती ही नहीं, प्रवृत्ति शब्द से यह सिद्ध हो जाता है। अतः भगवान् पतंजलि कहते हैं कि "प्रवृत्तिः खल्वपि नित्या"।

१. "शब्दस्य परिणामोऽयमित्याम्नायविदो विदुः।
छन्दोभ्य एव प्रथममेतद्विश्वं व्यवर्त्तत॥" (वाक्यपदीय)

अर्थात् जैसे मृद धर्म समन्वय के कारण घट को मृत्तिका से बना कहते हैं, उसी प्रकार सम्भूत भोक्तृ, भोग्य शक्ति तथा शब्द मात्र के समन्वय के कारण

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विश्व को शब्द विवर्त्त कहते हैं। शब्द से विश्वजगत् विवर्त्तित होता है, यह विज्ञान सम्मत है। इसे मैडम ब्लैवेटस्की तथा एनीवेसेन्ट ने स्वीकार किया है। एनीवेसेन्ट कहती हैं—"And here indeed may we bring together ancient and modern thought; Sabda Brahman is the force that builds the cosmos, but it is also the force by which a yogi brings about all powers within himself, and so as I saw, taking our western science, we can now bring in support of this form building power of sound, a number of what are called facts which to some persons are more Convincing than those deeper realities of which the fact is only the phenomenal expression. These facts which modern science has gatherd with respect to sound, are valuable to us, not as teaching us they ought not to have anything to teach us-but are enabling us to Convince others who have not understood the value of the scriptures, though the scriptures give the essence of which science may gives the outer manifestation."

(The Building of the Cosmos, p. 17-18)

ब्लैवेटस्की ने कहा है—"The explanation I am going to give you will appear througly mystical, but if mystical, it has a tremendous significance when properly understood. Our old writers said that "vach" is of four kinds. Every kind of Vaikhari Vach exists in its Madhyama, further in Pasyanti and ultimately in Para form. The reason why this Pranava is called Vach, is this that the four principles of the great Cosmos correspond to those four farm of Vach. Now the whole manifested solar system exists in its Sukshma form in the light or energy of the Logos, because its energy is caught up and transferred to Cosmic Matter.....— The whole cosmos in its objective form in Vaikhari-Vach, the light of the Logas in the Madhyma Form and the Logas itself the Pasyanti Form, and Prabrahma the Para form or aspect of that Vach"

—(The Secret Doctrine, Vol I, p. 138)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वेद के स्थूलरूप का वर्णन करते समय हम वैखरी अवस्था को ही लक्ष्य करते हैं। यह पहले कहा जा चुका है कि जगत् कारण ब्रह्म अपनी माया के द्वारा अनेक रूपों में विभक्त होकर विश्वरूप धारण करते हैं। वे जितनी संख्या तथा परिणाम में विभक्त होते हैं, पद भी उतने ही हैं। एक-एक वैखरी वाक्, एक-एक व्यक्त शब्द ही एक-एक भावविकार हैं। भावविकार अनन्त हैं। अतः शब्द एवं वेद भी अनन्त हैं। "वेदा वा एते अनन्ता वै वेदाः"—(तैत्तरीय ब्राह्मण)

अर्थात् हे भारद्वाज। ये तीन वेद हैं। वेद अनन्त हैं। समग्रवेद पढ़ने के संलल्प का परित्याग करो। इन श्रुतिवचनों के प्रति लोगों की श्रद्धा ही शेष नहीं है। जो कुछ भी हो, वेद का स्थूलरूप विलुप्त प्राय है।[1] वेद अनन्त है। वेद तथा ब्रह्म एक ही पदार्थ है। यह सब उक्तियाँ भले ही आधुनिक समय के नवशिक्षित स्वीकार न करें, तथापि आज वेद के रूप में जो कुछ उपलब्ध होता है, वह इसका पूर्ण स्वरूप कदापि नहीं है। वेद उससे अत्यन्त वृहद् है। इस

वैखरी का स्वरूप—"यस्याः श्रोत्तविपयत्वेन प्रतिनियतं श्रुतिरूपं सा वैखरी श्लिष्ट-व्यक्त-वर्ण समुच्चारण प्रसिद्ध साधुभावा भ्रष्टसंस्कारा च दुन्दुभिवेणु-वीणादिशब्दरूपा चेत्यपरिमितभेदा"—(वाक्यपदीय टीका)

अर्थात् वैखरी शब्द श्रुति का (कानों का) विषय है। यह इन्द्रियग्राह्य स्थूल रूप धारण करके इन्द्रियों से अनुभूत होता है। यह श्लिष्ट है (परस्पर आलिंगित, सम्बद्ध है)। व्यक्त वर्णरूपा, अप्राप्त साधुभाषा है। भ्रष्ट संस्कार है और दुंदुभि, वीणा, वेणु आदि के समान अपरिमित भेदयुक्त भी है।

मध्यमा का स्वरूप—मध्यमा त्वन्तः सन्निवेशिनी परिगृहीतक्रमेव बुद्धिमात्रोपादाना सूक्ष्मा, प्राणवृत्त्यानुगता प्रतिसंहतक्रमा सत्यप्यभेदे समाविष्टक्रमशक्तिः"

अर्थात् मध्यमावाक् अन्तःसन्निवेशिनी, परिगृहीतक्रमा, बुद्धिमात्रोपादाना, प्राणवृत्यानुगता, प्रतिसंहतक्रमा तथा अभिन्न होने पर भी समाविष्ट क्रमशक्ति रूपा है।

पश्यन्ति का स्वरूप—"पश्यन्ति तु सा चलाचलप्रतिबद्धसमाधाना, सन्निविष्ट-ज्ञेयाकारा, प्रतिलीनाकारा निराकारा च, परिच्छिनार्थ प्रत्यवभासा, संसृष्ट्यार्थ-प्रत्यवभासा च पश्यन्तसर्वार्थ प्रत्यवभासा चेत्यपरिमितभेदा"

१. मध्याकर्षण (gravitation) के आविष्कार के पूर्व भी मध्याकर्षण नामक क्रिया का अस्तित्व था।

"अतीतानागतं स्वरूपतोऽस्त्यध्वभेदाद्धर्मनाम"

—(पातंजलदर्शन, कैवल्यपाद, सूत्र १२)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तथ्य को स्वीकार करना ही होगा। आज शुक्लयजुर्वेद का जो कुछ अंश मिलता है, वह (महर्षि कात्यायन के मतानुसार) वाजसनेय संज्ञक माध्यन्दिनीयाख्य शाखा है, माध्यन्दिनीय संज्ञक अवान्तर भेद मात्र है। यजुर्वेद षड्शीति भेदात्मक है। माध्यन्दिनी शाखा उसका केवल एक भेद मात्र है। वाजसनेय संज्ञक भेद की भी १५ शाखायें हैं। उसमें से माध्यन्दिनी केवल मात्र एक शाखा है। शुल्क यजुर्वेद की केवल एक शाखा इस समय प्राप्त है।

पूज्यपाद पतंजलिदेव कहते हैं कि एक सौ अध्वर्युशाखा, सहस्रवर्त्मा सामवेद, एकविंशतिधा ऋग्वेद, नवधा अथर्वण वेद है। चरणव्यूह पाठ से भी विदित होता है कि यजुर्वेद षडशीति भेदात्मक है। अतएव वेद का स्थूल रूप विलुप्त प्राय है।[1] चरणव्यूह के अनुसार प्रत्येक वेद के एक-एक उपवेद होते हैं (Knowledge Subordinate to Vedas)। आयुर्वेद (Medicine) ऋग्वेद का (सुश्रुत संहिता के

अर्थात् जिसे हम अतीत तथा अनागत कहते हैं, वह स्वरूपतः सत् वस्तु स्वरूप में नित्य विद्यमान है। सत् का अभाव कभी भी नहीं होता। असत् की कभी भी उत्पत्ति नहीं हो सकती। जब घट नामक वस्तु का घटाकार धर्म अतीत की वस्तु हो जाता है, तब कहते हैं कि "घट नहीं है"। वर्तमान स्थिति में कहते हैं "घट है"। भविष्यत् दृष्टि से कहते हैं "घट होगा"। इस उदाहरण से ज्ञात हो जाता है कि धर्म अथवा अवस्था परिवर्तन ही उत्पत्ति है। परिवर्त्तन विशेष ही स्थिति है और परिवर्त्तन विशेष ही लय है। भावपदार्थ समूह व्यक्त, सूक्ष्म तथा गुणात्मक होता है। अर्थात् वह सूक्ष्म अवस्था अथवा अव्यक्तावस्था से व्यक्तावस्था, स्थूलावस्था में गमनागमन करता रहता है। समस्त पदार्थ त्रिगुण के परिणाम हैं। इसी प्रकार वेद का स्थूलरूप अन्तर्हित होने पर भी, उसकी सूक्ष्मावस्था का कभी नाश नहीं होता।

१. मध्यन्दिनीये वाजसनेयके यजुर्वेदाम्नाये" (शुक्लयजुःसर्वानुक्रमसूत्र)।
"यजुर्वेदस्य षडशीतिभेदा भवन्ति"–(चरणव्यूह)
"एकशतमध्वर्युशाखाः सहस्रवर्त्मा सामवेदः एकविंशतिधा·········नवधाथर्वणो वेदः"—(महाभाष्य)

चरणव्यूह में आयुर्वेद को ऋग्वेद का उपवेद कहा गया है, किन्तु सुश्रुत संहिता में उसे अथर्ववेद का उपांग निरूपित किया गया है। इसका कारण यह है कि महर्षि सुश्रुत (विश्वामित्रतनय) भगवान् धन्वन्तरी के शिष्य थे। भगवान् धन्वन्तरि ने प्रधानतः शल्यतंत्र का उपदेश दिया था। अतः शल्यतंत्र के दृष्टिकोण से आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपवेद कहा गया है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनुसार आयुर्वेद अथर्ववेद का) उपांग है। धनुर्वेद (Military Science) यजुर्वेद का, गांधर्ववेद (Music) सामवेद का तथा यंत्रशिल्प (Mechanics) अथर्ववेद का उपवेद है।

उपवेद भी विलुप्तप्राय है—"इह खल्वायुर्वेदो नाम यदुपांगमथर्ववेदस्यान्युत्पाद्यैव प्रजा: श्लोकशतसहस्त्रमध्यायसहस्त्रञ्च कृतवान् स्वयंम्भुः । ततोऽल्पाय .... प्रणीतवान्"—(सुश्रुत संहिता [1]

आयुर्वेद एक उपवेद है। सुश्रुत संहिता से ज्ञात होता है कि स्वयम्भु परमात्मा ने प्रजासृष्टि से पूर्व सहस्र अध्यायों में विभक्त, लक्ष श्लोकात्मक आयुर्वेद का प्रकाशन किया था। कुछ समय के उपरान्त मानव गण को अल्पायु तथा अल्पमेधावी देखकर उन्होंने अध्ययन सौकर्य के लिये शल्यतंत्र, शालाक्यतंत्र, कायचिकित्सा, भूतविद्या, कौमारभृत्य, अंगदतंत्र, रसायनतंत्र तथा वाजीकरणतंत्र प्रभृति अष्टभाग में आयुर्वेद को विभक्त कर दिया। अब स्वयंम्भु प्रणीत "आयुर्वेद" विलुप्तप्राय: है।

किंवहुना, आयुर्वेद संज्ञक ग्रंथ के अस्तित्व के सम्बन्ध में भी इस देश के विद्वानों को संदेह है। एक विद्वान कहते हैं कि वास्तव में आयुर्वेद नामक कोई ग्रंथ था, इसमें संदेह है। एक विद्वान्, कृतविद्य तथा आयुर्वेद वृत्तिक व्यक्ति से यह सुनकर आयुर्वेद नामक ग्रंथ के अस्तित्व के सम्बन्ध में मतभ्रान्ति हो जाती है। मेरे मन में इन उक्तियों से आयुर्वेद के अस्तित्व के प्रति कोई संदेह नहीं हो सका। मैं इन

---

१. बंगदेशीय विद्वान् रामदास सेन-महाशय ने "ऐतिहासिक रहस्य" नामक ग्रंथ में वेद के अपौरुषेयत्व का खण्डन करते हुये महामुनि सुश्रुत का वचन उद्धृत किया है "ऋषिवचनाच्च। ऋषिवचनं हि वेद:" "यहाँ सुश्रुत मुनि कहते हैं कि ऋषिवचन ही वेद हैं। जब मुनिगण ही वेद को ऋषिवाक्य मानते हैं तब हम इसे अपौरुषेय क्यों मानें ?

इस स्थल पर यह कहना उचित प्रतीत होता है कि रागद्वेष के वशीभूत हृदय से कभी भी सत्य तत्व का उद्रेक नहीं हो सकता। क्या सेन महाशय ने सुश्रुत संहिता के प्रथम पृष्ठ का अध्ययन नहीं किया ? यह स्पष्ट है कि सुश्रुत देव ने उक्त वचन का उस अर्थ में प्रयोग नहीं किया है, जिस अर्थ में सेन महाशय उसे प्रयुक्त करते हैं। यह भी स्मरणीय है कि वेद को "ऋषिवचन" कहने मात्र से उसका ऋषि द्वारा प्रणयन होना प्रतिपन्न नहीं हो जाता। यहाँ ऋषि शब्द का अर्थ भी चिन्तनीय है। महर्षि कात्यायन कहते हैं कि ऋषिगण मंत्रद्रष्टा हैं। वे मंत्रकर्त्ता नहीं है। कोई भी ऋषि मंत्रकर्त्ता नहीं है।

—(द्रष्टव्य—शुक्लयजु:सर्वानुक्रमसूत्र)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विद्वानों के आसार कथन को ग्रहण करने के प्रति अनिच्छुक रहता हूँ तथा विश्वास नहीं करता। कारण यह है कि इनमें स्वाधीन चिन्तनशीलता का पूर्ण अभाव है। ये पाश्चात्य विद्वानों के कथन को ही दुहराते रहते हैं। उनकी ध्वनि का हो गुंजन (इनके मुख से) प्रतिध्वनि रूप में होता है। भगवत्कृपा से चिकित्साशास्त्र पारदर्शी, न्यायवान्, पाश्चात्य वैज्ञानिक पण्डित जे. एफ. रायल महाशय विरचित "Antiquity of Hindu Medicine" नामक ग्रंथ के पाठ से इस प्रकार के मिथ्या संदेह विनिवृत्त हो जाते हैं।[1]

स्वयम्भुप्रणीत "आयुर्वेद" ग्रंथ की बात तो है ही, उससे अपेक्षाकृत आधुनिक असंख्येय आयुर्वेद से सम्बन्धित ग्रंथों का नामोल्लेख इस समय उपलब्ध ग्रंथों में मिलता तो है, तथापि वे ग्रंथ उपलब्ध ही नहीं हैं। डॉ० वाईस ने अपने ग्रंथ[2] में सुश्रुत के सतीर्थ औपधेनव तथा औरभ्र प्रणीत शल्यतंत्र (System of Surgery) सम्बन्धित ग्रंथ का नाम अंकित किया है। डॉ वाइस कहते हैं कि भारतवर्ष में अब भी वे ग्रंथ यत्र-तत्र उपलब्ध हैं, किन्तु आज तक दुर्भाग्यवशात् मैं उनका दर्शन नहीं कर सका। कहा जाता है कि योगसूत्र प्रणेता भगवान् पतंजलिदेव कृत चिकित्साग्रंथ का अस्तित्व है। नागेशभट्ट रचित मंजूषा नामक ग्रंथ में अंकित है कि चरकसंहिता भग-

---

१. "Sir W. Jones, in referring to this work, Says, that the "Ayurveda" supposed to be the work of a celestial physician, is almost entirely lost, but I have myself met with curions fragments of that primeval work" (Antiquity of Hindu Medicine, p 150-151, by Royle)

अर्थात् सर विलियम जोन्स ने उक्त ग्रंथ के लिये कहा है कि दिव्य चिकित्सक विरचित "आयुर्वेद" नामक ग्रंथ प्रायः विनष्ट हो गया है, तथापि उक्त मूल आयुर्वेद ग्रंथ के कोतुहलोद्दीपक अनेक अंश हमारे नयनपथ के विषय हो चुके हैं।

2. History of Medicine, vol I, By T. A. Wise, page 55

The following is a list of the principal medical works which are now found in Hindnostan and were complied after the great works of Charaka and Susruta. They are arrenged in the probable order in which they were prepared Aupadhenava and Susruta. They are arranged in the probable order in which they were prepared. Aupadhenava and Aurabhra wrote systems of Surgery.

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वान् पतंजलिदेव प्रणीत है। महर्षि भृगु ने धनुर्वेद का, भरतमुनि ने गांधर्ववेद का तथा वृहस्पति मुनि ने अर्थशास्त्र का उपदेश दिया था। धनुर्वेद तथा गांधर्ववेद भी दृष्टिगोचर नहीं होता। अतः उपवेद भी विलुप्त प्रायः हैं।

वेद के अंगोपांग—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्दः, निरुक्त एवं ज्योतिष ही वेद के षडंग हैं। धर्मशास्त्र, पुराण, न्याय एवं मीमांसा इसके उपांग हैं।[1] वेद के अंगों एवं उपांगों के भी विस्तृत स्वरूप का लोप हो चुका है। यहाँ वेदान्त के सम्वन्ध में ज्योतिष को ही उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। ज्योतिष द्विविध है— यथा फलित एवं गणित।

"ज्योतिषं गणितशास्त्रमिति सुभूतिः"—(उणादिवृत्ति)

अर्थात् "सुभूति" ने ज्योतिष को गणितशास्त्र (Mathematics) माना है।[2] ऋषि प्रणीत ज्योतिषशास्त्र विलुप्तप्रायः है। गणितशास्त्र के सम्वन्ध में भास्कराचार्य विरचित लीलावती, बीजगणित प्रभृति ग्रंथ ही हमारे आलम्वन हैं। विद्वानों का मत है कि गणित के भास्कराचार्य का लीलावती, बीजगणित, सुकुमार बुद्धि बालकों के लिये रचित था। आचार्य भास्कर स्वयं कहते हैं कि ब्रह्म, श्रीधर, पद्मनाभ प्रभृति प्रणीत बीजगणित आत्यन्तिक रूप से विस्तृत विज्ञान रूप हैं। अतः भास्कराचार्य कहते हैं कि "वे अल्पवयस्क, कोमलमति शिष्यगण के लिये सहजबोध्य नहीं हैं, इसी-लियें मैंने बालकों के लिये उनका सारग्रहण करते हुये इन ग्रंथों का प्रणयन किया है।" भास्कराचार्य प्रणीत लीलावती, बीजगणित ग्रंथ गणितशास्त्र की उन्नति की परिशेष सीमा अथवा मानदण्ड नहीं है। भास्कराचार्य ने जिन ग्रंथों को अत्यन्त विस्तृत कहा

---

१. विष्णुपुराण में चतुर्दश तथा अष्टादश विद्या निम्नलिखित रूप से संख्यात हैः—
"अंगानि चतुरो वेदा मीमांसा न्यायविस्तरः। पुराणं धर्मशास्त्रंच विद्या ह्येताश्चतुर्दश॥
आयुर्वेदो धनुर्वेदो गांधर्वश्च ते त्रयः। अर्थशास्त्रं चतुर्थन्तु विद्याह्यष्टादशैव ताः॥
अतः स्पष्ट है कि वृहस्पति प्रणीत अर्थशास्त्र को विष्णु पुराण में अथर्ववेद का उपवेद कहा गया है।

2. "द्युत दीप्तौ" दीप्त्यर्थक द्युत धातु के उत्तर में "इसिन्" प्रत्यय तथा आदि में जकारादेश होने से "ज्योतिः" पद सिद्ध हो जाता है "ज्योतिरधिकृत्य कृतो ग्रंथ इत्याधिकृत्य कृते ग्रन्थे" (पाणिनि) अर्थात् "ज्योतिषाधिकार पूर्वक जो ग्रंथ कृत है" इस अर्थ में "ज्योतिः" शब्द के उत्तर में "अण्" प्रत्यय करने से ज्यो-तिष पद सिद्ध होता है। "छन्दः पादौ तु वेदस्य, हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते। ... शिक्षां घ्राणं तुवेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्"—(पाणिनीय शिक्षा) अर्थात् छन्दः वेद का चक्षु, निरुक्त श्रोत्र, शिक्षा घ्राण तथा व्याकरण प्रमुख है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है, उनमें से एक भी इस समय सुलभ नहीं हैं।[1] अतः यह स्पष्ट है कि वेद के अंगोंपांग भी विकलीभूत हो चुके हैं।

प्राकृतिक विज्ञान (Physical Science) तथा रसायन शास्त्र (Chemistry) सम्बन्धित कोई भी ग्रंथ परिलक्षित नहीं होता। ताप, तड़ित्, आलोक प्रभृति प्राकृतिक शक्तिसमूह का किस प्रकार का तत्वानुसन्धान इस देश में हुआ था, इस सम्बन्ध में भारतवर्ष के शिक्षित समुदाय को विश्वास दिला सकना दुष्कर है। विज्ञजन के लिये तत्काल किसी सिद्धान्त की स्थापना कर देना कदापि उचित नहीं है। सर विलियम जोन्स तथा डॉक्टर रायल कहते हैं कि चिकित्सा तथा रसायनशास्त्र का कथन है कि चिकित्सा तथा रसायनशास्त्र इस देश में स्मरणातिक्रान्त अथवा अस्मार्त्त काल से ही अनुशीलन के विषय रहे हैं। छान्दोग्योपनिषद् से विदित होता है कि भारतवर्ष में भूतविद्या (भूततंत्र Physical science), राशिविद्या (गणित Mathmetics), दैवविद्या (Meterology), अन्तरिक्षविद्या, वायु नभोविद्या), वाकोवाक्य (Logic तर्कशास्त्र), एकायन (नीति शास्त्र) क्षत्रविद्या (धनुर्वेद Miltary sciencc), नक्षत्रविद्या तथा ज्योतिष (Astronomy and Astrology), देवजन विद्या (गन्ध-युक्ति, नृत्य-गीत-वाद्य-शिल्पादि विज्ञान Treatises on Arts and Manufactures,) वेद, व्याकरण अथवा रसायन (Chemistry) की चर्चा

---

१. श्रीधराचार्य आदि द्वारा प्रणीत विस्तृत बीजगणित विलुप्त हो चुका है, तथापि उसके अस्तित्व को प्रमाणित कर सकना कठिन नहीं है। भास्कराचार्य ने स्वप्रणीत लघुबीजगणित में श्रीधर, पद्मनाभ प्रभृति के सूत्रों का उद्धरण दिया है। अव्यक्तवर्गादि समीकरणाध्याय में (Method of Solving a quardratic) भास्कराचार्य ने श्रीधराचार्य के सूत्र का उद्धरण दिया है—"चतुराहतवर्गसमैः रूपैः पक्षद्वयं गुणयेत्। अव्यक्तवर्गरूपैर्युक्तौ पक्षौ ततो मूलम्"। ढाका कालेज के गणितशास्त्र शिक्षक कालिदास वसु स्वप्रणीत "Algebra Made Easy" नामक ग्रन्थ में श्रीधराचार्य के इस सूत्र की व्याख्या करते हैं—यथा "Raduce the equation to the form $Px^2xq = r$, multiply both sides of this by 4p (i e. by four times the Co-efficient of x^2) and then add q^2 to both sides, we thus get $4p^2x^2 + 4pqx + q^2 = 4pr + q^2$, the left hand side of which is evidently a complete square being equal to $(2px + q)^2$"

—(Algebra made Easy, by K. Vasu, vol. II, P.112)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पाटीगणित (Arithmetic), बीजगणित (Algebra), रेखागणित (Geometry), तथा त्रिकोणमिति (Trignometry) का चिन्तन करने से प्रतिपन्न होता है कि इन चतुर्विध गणित प्रकरण की व्युत्पत्ति होने पर ही सर्वप्रकार के गणित प्रकरणों पर अधिकार प्राप्त हो जाता है। भास्कराचार्य कहते है कि गणित भी व्यक्त एवं अव्यक्त रूप से द्विविध है। यह सारपूर्ण तथ्य है। दार्शनिक ही इसके सारतत्व को प्रत्यक्ष कर सकते हैं। पाटीगणित तथा बीजगणित स्वरूपत: स्वतंत्र अथवा परस्पर भिन्न गणित प्रकरण नहीं हैं। सभी प्रकार के गणित प्रकरण एक प्रकार के ही भिन्न-भिन्न व्यवहार मात्र हैं। भास्कराचार्य स्पष्ट रूप से उच्च स्वर में कहते हैं कि जो अमल मति हैं, उनके लिये त्रैराशिक (Rule of Three) ही यथेष्ट है। त्रैराशिक तत्वबोध हो जाने पर समस्त गणित प्रक्रिया साधित हो जाती है। जिन्हें त्रैराशिक की व्युत्पत्ति हो गई है, जिनकी बुद्धि इस ज्ञान से विमल है, उनके लिये कुछ भी अज्ञात नहीं है। मन्द बुद्धि वालों के लिये ही शास्त्र विस्तार किया जाता है। (द्रष्टव्य गोलाध्याय)

जैसे स्वच्छ मस्तिष्क की स्थिति का भास्कराचार्य ने वर्णन किया है, वर्त्तमान काल में उस प्रकार के स्वच्छमस्तिष्क विशिष्ट व्यक्ति दुर्लभ हैं। हा भारतवर्ष! तुम्हारी यह अधोगति! तुम्हारे ही गर्भ से प्रसूत, तुम्हारे गर्भधृत; तुम्हारे स्नेह से लालित-पालित, तुम्हारे सन्तानगण भी तुम्हारी यह दुर्गति देखकर, तुम्हारी अवज्ञा कर रहे हैं। भारतवर्ष को असभ्य बर्बर कह रहे हैं। सूर्य अस्त होने पर चन्द्रमा की प्रधानता हो जाती है! जिसने सुदीर्घ अन्धकार में जन्म ग्रहण किया है, उस दुर्भाग्य शिशु के क्षुद्र जीवन में दिनमणि के समुज्वल तेज का निरीक्षण कर सकने का अवसर कैसे मिलेगा? वह दिनमणि का आदर क्यों करेगा? वह, यह कैसे जान सकेगा कि चन्द्रमा दिनमणि के ही प्रकाश से प्रकाशित है। यह समय इस दुर्भाग्य देश के लिये सुदीर्घ रजनी के समान है। भारत रवि दीर्घकाल से अस्तमित हो चुका है वर्त्तमान भारत सन्तान समूह भारत के दशदिग् विस्तारित दिनमणि के भास्वरमुख को नहीं देख सका। मेघावृत पाश्चात्य सुधाकर के क्षीण आलोक से आज भारत आलोकित है, यही आज का भारतवासी उपलब्ध कर रहा है। इसीलिये आज का भारतवासी भारतवर्ष की अवज्ञा करने में प्रवृत्त है। वह भारतगगनोदित, समन्ताद् प्रद्योतमान सुदुरवर्त्ती ऋषि रूप नक्षत्रों का उपहास कर रहा है। उनके अस्तित्व के प्रति संदिग्ध है। देश की अवनति का वृत्तान्त और कितना कहूँ? कूपमण्डूक बने भारतवासी कहते हैं कि ज्यामिति भारतवर्ष की देन नहीं है। यह ग्रीकवासियों की सम्पत्ति है

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनादिकाल से होती रही है। पूज्यपाद महर्षि नारद ने इन सभी शास्त्र समूह का सम्यक् अध्ययन किया था।[1]

शिल्पशास्त्र की विशेष उन्नति भारतवर्ष में हुई थी, पाश्चात्य विद्वान् सर विलियम जोन्स[2] के वचन से यह परिज्ञात हो जाता है। सर जोन्स कहते हैं कि यूरोपीय गणना के अनुसार सार्द्धद्विशताधिक (२५०) शिल्प विद्याओं का आविष्कार होने पर मानव प्रकृति से सुखमय जीवन की साधन तथा भूषण स्वरूपा वस्तुओं का निर्माण करने में सक्षम हो जाता है। यद्यपि भारतवर्ष की शिल्पविद्या चतुःषष्टि (६४) संख्याओं में ही लघुकृत् है, तथापि अब्दुल फजल कहते हैं कि हिन्दू शिल्पी एवं विद्वान् ३०० शिल्प एवं विज्ञान की गणना करते हैं। यद्यपि इस समय भारत का शिल्प अपेक्षाकृत अल्पीभूत हो रहा है, तथापि यह निश्चित रूप से कहा जा सकता

(geometry is pre-eminently a Greek Science)। (विद्वान् सदानन्द मिश्र कृत हिन्दी भाषानुदित रेखागणित की भूमिका द्रष्टव्य है)। पाश्चात्य विद्वान् रायल कहते हैं कि नहीं, ऐसा नहीं है। ज्यामिति (Geometry) भारतवर्ष की ही सामग्री है। जब प्राचीन ग्रीक में ज्यामिति का कोई सन्धान ही नहीं था, तब भारतवर्ष में ज्यामिति का पूर्ण विकास हो चुका था। त्रिकोणमिति भी भारतवर्ष की ही सम्पत्ति है। विद्वान् Royal कहते हैं "Among these that which discovers the area of a trangle when its three sides are known, is remarkable, as it does not appear to have been known to the ancient Greeks" —(Antiquity of Hindoo Medicines, p 163)

बीजगणित, रेखागणित तथा त्रिकोणमिति का ज्ञान आयत्त होने पर ही calculus, statics, Dynamics, optics, Hydrostatics, सहजबोध्य हो जाता है। योग तथा फलित ज्योतिष भी सूक्ष्म गणित ही है।

१. छन्दोग्योपनिषत् द्रष्टव्य

2. "Physics appears in these regions to have been cultivated from time immemorial, as well as chemistry, on which we may hope to find useful disquisitions in Sanskrit, since the old Hindoos unquestionably applied themselves to that enchanting study"

—(Jones Dise. x)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है कि आज भारतवासी जिन सब शिल्पों का व्यवहार करते हैं, प्राचीन भारतवासी भी अन्ततः उन्हीं शिल्पों का व्यवहार करते थे। विषप Heber भी यही कहते हैं।[1]

श्रद्धास्पद विद्वान् श्री सूर्यंतारायण राव अपने ग्रन्थ The Astrological Self-Instructor में अत्यन्त प्रयोजनीय, आशाप्रद, स्वदेश हितैषी, मातृ-पितृ भक्त, स्वीय-परकीय हितार्थी, ऐहिक-पारत्रिक कल्याणाकांक्षी, अविकृत भारत सन्तान का परमकमनीय संवाद प्रस्तुत करते हैं। इस दुर्दिन में इस प्रकार के संवाददाता के प्रति हम अन्तर से धन्यवाद ज्ञापन करते हैं। भगवान् उनका यश चिरस्थायी करे !

विद्वान् सूर्यनारायण राव उक्त ग्रंथ की उपक्रमणिका में कहते हैं कि फलित ज्योतिष पूर्णतः विज्ञान सम्मत है। उनका कथन है कि ऋषिगण आलोक (Light) ताप (Heat), अयष्कर्षण (Magnetism) तथा तड़ित् (Electricity) सम्बन्धित तत्व से सम्यक्रूपेण अवगत थे। यह कथन असंगत नहीं है। इस युक्ति द्वारा हम किसी काल्पनिक मत का प्रकाशन नहीं कर रहे हैं। जो विहित रूप से शस्त्रानुसन्धान किये बिना ही, शास्त्रों को असार मानकर उनकी उपेक्षा करते हैं, उन नव वैज्ञानिकों को तर्क द्वारा एक वार में धराशायी किया जा सकता है।

श्रद्धास्पद राव पुनः कहते हैं कि प्राचीन ऋषि समस्त दृष्टिगोचर प्राकृतिक परिणामसमूह के सम्यक् तत्वानुसंधानार्थ समवेत रहते थे। ऋषियों के इस प्रकार के सम्मिलन का तथ्य शास्त्रों में अंकित है। ऋषिगण सर्वभूतहित चेष्टा के कारण

---

1. "The other useful arts have long been neumerous among the Hindoos is evident for Sir W. Jones says 'that Europeans euumerate more than two hundred and fifty mechanical Arts by which the productions of nature may be variously prepared for the convinience and ornament of life : and though the Silp Shastra (or Sanskrit collection of Treatises on art and Manufactutes), reduces them to 64, yet Abul-Fazal had been assured that the Hindoos reckoned three hundred Arts and science, now their science being comparatively few, we may conclude that they anciently practised at least as many useful arts as ourselves (Jones, 10th Dise). With respect to their skill in many of these arts, we may adduce the unexceptional evidence of the late excellent, widely and universally esteemed Bishop Heber."—(Antiquity of Hindoo Medicine, p 180)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हिमालय के पार्श्वदेश में समवेत हो रहे थे, यह तथ्य चरकसंहिता में भी अंकित है।[1] महर्षि मातंग इस ऋषिसभा के सभापति थे। सौभरि उनके सहकारी रूप में विराजित थे। इससे आज के विद्वान यह सहज अवधारणा कर सकते हैं कि प्राकृतिक विज्ञानविषयक, स्वल्पाक्षर, सारवत् लक्षाधिक सूत्रों की रचना कैसे हो सकी थी? श्री राव पुनः यह कहते हैं कि इस ग्रंथ का अल्पांश मेरे एक मित्र के पास है। सुविधा होने पर स्वदेश के उपकारार्थ उसे प्रकाशित करने की इच्छा है। इस ग्रंथ में सौदामिनी (Electricity and Magnetism) तत्व विषयक सूत्रों का सन्निवेश है। सूर्यादि ग्रह, पृथ्वी, पृथ्वी के अन्तर्गत निहित वस्तु, पार्थिव, जीवन, एवं उद्भिद् का संविधान तथा निर्माण तत्व भी इसमें उपदिष्ट है। इसके एक अध्याय में मानवीय सामुद्रिक (Physiognomy) भी वर्णित है। इस ग्रंथ का तड़ित् विषयक अध्याय भी गंभीर रहस्य युक्त है। इस ग्रंथ के प्रकाशन से पाश्चात्य विद्वान यह धारणा करने के लिए विवश होंगे कि ऋषियों को प्रकृति तत्व तथा नियमों का समीचीन ज्ञान उपलब्ध था। उक्त ग्रंथ का यह अध्याय "भौतिकातिभौतिकशास्त्रम्" (A Treatise on the Elementary Principles of Physics) संज्ञा से अभिहित है। आर्यगण का वेदम (रसायन शास्त्र Treatise on Chemistry) भी था।[2] वेदाख्य आर्य

---

१. "विघ्नभूता यदा रोगा प्रादूर्भूता शरीरिणाम्।
तपोपवासाध्ययनब्रह्मचर्यव्रतायुषाम्॥
तदा भूतेष्यनुक्रोशं पुरस्कृत्य महर्षयः।
समेताः पुण्यकर्माणः पार्श्वे हिमवतः शुभे॥"—(चरक संहिता)

अर्थात् पुणयकर्मणा महर्षिगण ने जब देखा कि तपस्या, उपवास, अध्ययन, ब्रह्मचर्य, व्रत, तथा आयु के विघ्नभूत नाना दैहिकरोग आविर्भूत हो रहे हैं, तब उन्होंने सर्वभूत हित के लिए दयावश होकर हिमालय पर्वत के पार्श्वदेश में एकत्रित होकर यह विचार किया कि किस उपाय से जीवों का स्वास्थ्य संरक्षण हो तथा व्याधिविमोचन हो।

२. "वेदं पित्रौ राशिदैवो"—(छान्दोग्य)
श्रुति प्रस्थान में वेद शब्द का किस अर्थ में प्रयोग किया गया है? भाष्यकार भगवान शंकराचार्य कहते हैं कि "वेदं व्याकरण मित्यर्थ : अर्थात्" वेदम् व्याकरण समझाने के लिए प्रयुक्त हुआ है। पूज्यपाद ज्ञाननिधि भगवान शंकराचार्य ने जिस कारण से वेदम् का शब्द का (इस स्थान पर) व्याकरण अर्थ ग्रहण किया है, इसे स्वयं ही स्पष्ट करते हैं। जिसके द्वारा पदार्थ तत्व अवगत होता है, उसे वेद कहते हैं :—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"व्याकरणेन हि पदादिविभागशः ऋग्वेदादयो ज्ञायन्ते"—(शांकरभाष्य)

अर्थात् व्याकरण द्वारा पदादिविभाग पूर्वक ऋग्वेदादि परिज्ञात होता है। व्याकरण द्वारा पदार्थ तत्व की उपलब्धि होती है। अतः वेद शब्द का अर्थ "व्याकरण है"

वेद या व्याकरण ही सूक्ष्म रसायन शास्त्र है—"वेद या व्याकरण ही सूक्ष्म रसायन शास्त्र है।" व्याकरण कहने से जो कुछ भी ज्ञात होता है, उससे परिचित सामान्य लोग मेरे इस वाक्य को उन्मत्त प्रलाप ही मान सकते हैं। किन्तु वैयाकरण तथा ऋषिगण व्याकरण को जिस दृष्टि से देखते हैं, उस दृष्टि से जो भाग्यवान् व्यक्ति व्याकरण को देखता है, वह इस शास्त्रमर्म के रहस्य से अवगत हो सकेगा कि "शब्द से ही विश्व जगत् की सृष्टि होती है।" वही इस तथ्य की उपलब्धि करने में समर्थ होगा कि "वेद अथवा व्याकरण ही सूक्ष्म रसायन शास्त्र है।" उसके लिए यह वाक्य उन्मत्त प्रलाप न होकर अत्यन्त मूल्यवान उपलब्धि के समान होगा। रसायन शास्त्र ने इस सिद्धान्त का निर्धारण किया है कि विकार अथवा कार्य किसी न किसी मूल पदार्थ से उत्पन्न है। कतिपय अनन्यसंसक्त मूल पदार्थ हैं। विश्व ब्रह्माण्ड के समस्त मिश्र अथवा यौगिक पदार्थ उसके सम्मिलन से समुत्पन्न होते हैं।

"Chemistry shows by actual experiment that all matter is made up of the elements which have been already isolate"—(Popular Scientific Lectures, Vol I, P 328, By Helmholtz)

मूल अथवा अविमिश्र पदार्थ समूह का पारस्परिक संयोग-वियोग, संश्लेष-विश्लेष ही रसायनशास्त्र का प्रतिपाद्य विषय है। मूलभूतों के संयोग विभाग से रसायन शास्त्र का प्रतिपाद्य प्रतिपादक सम्बन्ध अक्षुण्ण है।

"Chemistry deals with the union and separation of elements it regards all the substances of nature, as either simple or compound; the manner of union or composition special to the science"—(Bain's Logic, Part II, P 242-43)

—रासायनिक विद्वान् कुक कहते हैं :—"In most works on chemistry this subjet if defined as the science which treats of the Compo·sition of bodies and it is made the chief object to present the scheme of the chemical elements, and to show that, by com

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रसायनशास्त्र का अध्ययन करने से विदित होगा कि आर्यगण रसायन विज्ञान क्षेत्र में विशिष्ट उन्नति प्राप्त कर सके थे। इस ग्रंथ में यह भी अंकित है कि पार्थिव एवं दिव्यरूप समस्त पदार्थ समूह का अन्तर्वहिः अन्वेषण करने पर भी, उक्त ऋषि समिति जब विश्व के परमकारण का संधान पा सकने में अक्षम रही, तब उसने योग का आश्रय लिया [1]

bining these elements the innumerable products of nature and the arts may be prepared"

—(The New Chemistary, by Cooke)

वर्ण समाम्नाय एवं पद समाम्नाय ही व्याकरणोक्त विषय है। व्याकरणोक्त सन्धि, समास, कारक, तद्धित्, तिगंत, कृदन्त इत्यादि प्रतिपाद्य विषयसमूह का तत्व चिन्तन करने से यह सम्यक् रूप से ज्ञात होगा कि रसायन शास्त्र के समान ही व्याकरण का विषय है, मूल पदार्थ (प्रकृति) के प्रत्यय संयोग से विविध पदों की उत्पत्ति का वर्ण एवं पदगत् विविध परिणाम (change) का संधान। जिन्होंने पूज्य भर्तृहरि के उपदेश का अवलम्बन करते हुए शब्द को भेद संसर्ग-वृत्तिक अणु का समानार्थक समझा है, वे व्याकरण तथा रसायन शास्त्र के संबंध को भी अनायास समझने में समर्थ हैं। वेद अथवा व्याकरण भी सूक्ष्म रसायन शास्त्र है।

1. "There is nothing improbable in supposing them to be acquanited with laws of light, heat, magnetism, and electricity and when I saw "nothing improbable", I do not thank, I have put forth any wild theory which requires to be knocked down at once by the modern scientifc young men, who treat so lightly our ancient sciences, without the least effort on their part to go into their details, A Congress of the Rishes seems to have been held, with the object of throughly investigating the physical phenomena and its head stood Maharshi Matanga with Soubhari for his assistent. They framed more than a hundred thousand sutras or short Verses, Containing a good deal of menaning but conciously written, for the sake of remembering the same with little or no effort. A small portion of this work is with one of my friend and should circumstances

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

योग अध्यात्म विज्ञान है। यह जड़ विज्ञान का सूक्ष्म स्वरूप है। यह जड़ विज्ञान का व्यापक एवं विशुद्ध भाव हैं। विद्वान आगस्ट कामट योग को मनस्तत्वानुसन्धान निरत व्यक्ति को गर्वित चित्त भ्रम अथवा दुष्टाभिसन्धिसिद्धि का अवगुंठन (veil) कहते हैं, तथापि ऐसा नही है। योगी योगसाधन विकासित

---

allow me I shall try to publish their contents shortly for the benefit of our country men. In the portion of work I have seen, the sutras refer to Soudameni or electricity and magnetism. It also gives us the composition of the sun, of the several planets, the composition of the Earth, its minerals, its plants and its animals, with a Chapter devoted to the physiognomy of man. The chapter or the electricity is beautifully written and when translated, will reveal to the western mind, that the hair-splitting speculative philosophers of the East had also a good knowledge of the elements and the laws which cotrolled then.

This part goes under the name of "Bhoutikati—Bhouthika Shastram" and means a treatise on the elementary principles of physics. They had also Vedum a tretis on chemistry and their works show us ample signs of splendid progress in this department. The Committee that sat to inqire, says the book, into the final course of the universe was unable to trace its existence in the terrestrial or celestial phenomena and be took itsef to the yoga practice, wherein they seem to have exeelled all other nations of the Earth"—(The Astrological Self Instructer, by S. N. Rao, P—47–48)

१. विद्वान कामट की उक्ति—"The metaphysical utopias, in which a life of pure contemplation is held out as the highest ideal, attractive as they are to modern men of Science, are really nothing but illusions or veils for dishonest schemes"

—(System of Positive Polity, Vol I, P, 13)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शक्ति के द्वारा अतीत, अनागत, व्यवहित, विप्रकृष्ट, व्यक्त, अव्यक्त रूप समस्त पदार्थों का सर्वदा प्रत्यक्ष करते रहते हैं। देश-काल भी योगी की सर्वदर्शी नयन-गति में बाधा दें सकने में असमर्थ हैं। अलौकिक शक्ति सम्पन्न योगी सभी इन्द्रियों द्वारा सर्व विषय ग्रहण करने में सक्षम है।[1] शरीर से अत्यन्त सुदूरवर्ती पदार्थों को भी जितेन्द्रिय योगी बुद्धिगोचर कर लेता है। किम्बहुना प्रकृति भी उसकी वशवर्त्तिनी हो जाती है।

प्रकृति रूप वेद ही सभी विज्ञानों का प्रभव एवं उत्पत्तिस्थान है। यही सभी ज्ञानों का प्रकाशक भी है। जिस प्रकृतिरूप वेद के अध्ययन के द्वारा बहिर्मुख वृत्तियुक्त मानव जड़ विज्ञान की उन्नति कर सका है, उसी प्रकृतिरूप वेद के अध्ययन के द्वारा योगीगण अध्यात्म विज्ञान का आविष्कार करते हैं। प्रकृति वेद के उपदेश श्रवण के अभाव में मानव किसी भी प्रकार का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। प्रकृति का अनुसरण किये विना मानव किसी भी नूतन पदार्थ की सृष्टि कर सकने में समर्थ नहीं है। मानव जो कुछ भी आविष्कार करता है, वह अनभिज्ञता के कारण नवीन परिदृश्यमान होने पर भी नूतन नहीं है। समस्त मानव कृति प्रकृति की ही अनुकृति है। सूक्ष्मद्रष्टा, अन्तर्मुखवृत्ति योगी का उपदेश स्थूलदर्शी बहिर्मुख वृत्ति मानव को अप्राकृतिक प्रतीत होता है। असम्पूर्ण प्रकृति युक्त, अधूरा वेदाध्ययन ही इसका कारण है।

दृष्टान्त द्वारा जड़विज्ञान तथा अध्यात्मविज्ञान का ऐक्य प्रदर्शन—प्रत्येक क्रिया प्रत्येक स्थल पर समान एवं प्रतिकूल प्रतिक्रिया से युक्त है। जिस बल से एक वस्तु अन्य वस्तु पर आघात करती है, ठीक उसी बल से वह आघात प्राप्त वस्तु द्वारा प्रतिहत भी होती है। घात-प्रतिघात सर्वत्र समान एवं प्रतिकूलाभिमुख रूप से कार्यकारी रहते हैं।[2] सर्वजनमान्य विद्वान न्यूटन का यह गति सम्बन्धित तृतीय सिद्धान्त है।

---

१. श्रुति का कथन है— "घ्राणतः शब्दं श्रृण्वन्ति पृष्ठतौ रूपाणि पश्यन्ति"
—(मंजूषाधृत श्रुति)

अर्थात् योगीगण घ्राण द्वारा शब्दश्रवण एवं पृष्ठ द्वारा रूप संदर्शन कर सकते हैं। यह तथ्य असंभव सा प्रतीत होता है। जो कामट के मतावलम्बी हैं वे इसे सुनकर प्रलाप वाक्य मान सकते हैं। यह सत्य है कि विदेशी विद्वानों में कोई-कोई योगविभूति के प्रति आस्थावान परिलक्षित हो रहे हैं। अतः आशा है कि एक दिन पुनः योगसाधना के प्रयोजन का प्रकाश होगा। तब यह प्रतिपन्न हो सकेगा कि योगीगण किसी भी इन्द्रिय द्वारा कोई भी कार्य कर सकते हैं।

२. "Reaction is always equal and opposite to action that is to say, the actions of two bodies upon each other ar always eaual and in opposite directions"—(Matter & Motion, by Maxwell, P 46)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नियम की गणित सम्मत उपपत्ति—गति द्वारा न्यूटन जिस पदार्थ को लक्ष्य करते हैं, वह है वेग (Velocity) तथा सामग्री (Mass) का गुणफल। संवेग अथवा मूर्त्तक्रिया (Momentum) को ही न्यूटन गति (Motion) संज्ञा से अभिहित करते हैं। न्यूटन के तृतीयनियम का यही निर्गलितार्थ है। संवेग (Momentum) = वेद × सामग्री। (Momentum = Product of mass into velocity) । मान लिया कि एक अस्थिति स्थापक धर्म विशिष्ट (Inelastic) चलिष्णु संहनन (body) है, जिसकी सामग्री (Mass) परिमाण १० है, वेग का परिमाण २० है। एक अन्य नद्धर्मयुक्त संहनन को जिसकी सामग्री एवं वेग १५-१५ हैं आघात किया। उभय संहनन समान दिशा में प्रधावमान हैं। अब यह देखना है कि उक्त संहनन द्वय के परस्पर मिलित होने पर संवेग सम्वन्धित (Momentum) क्या परिवर्त्तन हुआ ? संयुक्त होने के पूर्व प्रथमोक्त संहनन के संयुक्त होने पर सम्मिलित सामग्री (united mass) १७ परिमित वेग से चलने लगेगी, यह गणितशास्त्र का सुविदित नियम है।[1] १० × १७ = १७० एवं १५ × १७ = २५५। परस्पर संयुक्त होने पर संहनन द्वय का संवेग परिलक्षित होता है यथाक्रम से १७० तथा २५५। २०० — १७० = ३० एवं २५५ – २२५ = ३०। अतः विदित हुआ कि संहनन द्वय का संवेग समपरिमाण में वर्द्धित एवं अपेत हुआ है।

विद्वान न्यूटन ने प्रकृति के जिस नियम का संदर्शन किया है, जगत् के उपकारार्थ उसे लिपिवद्ध किया है। "प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया है, जिस वल से कोई वस्तु अन्य वस्तु पर आघात करती है, उसी वल से वह आघात प्राप्त वस्तु द्वारा प्रतिहत होती है। यह एक प्राकृतिक घटना (Natural Phenomena) है। कार्यमात्र का कारणानुसन्धान विज्ञान का कार्य है। पण्डित न्यूटन ने यह तो कह दिया कि कैसे होता है, परन्तु क्या उन्होंने यह बतलाया है कि ऐसा क्यों होता है ? क्रियामात्र की प्रतिक्रिया है, यह सार्वभौम नियम, प्राकृतिक नियम उन्होंने स्वीकार भी किया है। विश्व की सृष्टि-स्थिति-लय भी इसी नियम के अधीन है। पूज्यपाद भगवान वशिष्ट देव कहते हैं अग्नि तथा सोम परस्परतः एक-दूसरे को अभिभूत करने की चेष्टा करते रहते हैं। एक बार अग्नि की जय होती है, सोम पराजित हो जाता है, दूसरी

---

(1) १० सा + १५ = २५ सा, $\frac{१० \times २०}{२५} = ८$ एवं $\frac{१५ \times १५}{२५} = ९$; ९ + ८ = १७
(१० × २२) + (१५ × १४) = ४२५। २५ सा (मिलित होने पर) १७ वेग
∴ संवेग = २५ × १७ अथवा ४२५.

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बार सोम की जय तथा अग्नि की पराजय परिलक्षित होने लगती है।[1] भगवान वशिष्टदेव के इस उपदेश से यह सिद्ध होता है कि क्रियामात्र की प्रतिक्रिया अवश्य होती है।

"स सध्नीची: विषुचिर्वसान आवरोवर्त्ति भुवनेष्वन्त:" — (ऋग्वेद संहिता)

इस ऋचा के द्वारा वेद यह समझाते हैं कि क्रिया की प्रतिक्रिया है। पुल्लिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग रूप से भावविकार मात्र को लिंगत्रय में विभक्त किया गया है। इस प्रकार से वैयाकरणों ने न्यूटन के गति सम्बन्धित तृतीय नियम का विस्तीर्ण रूप प्रदर्शित किया है। एक प्रस्तर खण्ड को निक्षेप करने पर, उसमें जिस नियम का प्रतिफलन होता है, उसी नियम के कारण जगत् संदसदात्मक है, उसी नियम के वशीभूत होकर वह भोक्तृ-भोग्य सम्बन्धात्मक भी है। हम सकाम भाव से अथवा राग-द्वेष वशवर्त्ती होकर जो कर्म करते हैं, उसके संस्कार से हमारा चित्तपट रंजित एवं जड़ित हो जाता है। सभी अपने-अपने कर्म का फलभोग करते हैं। जब तक आत्मज्ञान का प्रकाश नहीं हो जाता, जब तक हृदय निष्काम नहीं हो जाता, तब तक सभी को पुन: पुन: जन्मग्रहण करना ही होगा। ब्राह्मण-क्षत्रियादि जातिभेद प्राकृतिक है, मानव कृत नहीं है। ये सब शास्त्रीय उपदेश समूह इस नियम पर आधारित हैं कि क्रियामात्र की प्रतिक्रिया है, प्रत्येक क्रिया स्व-स्व प्रतिक्रिया के समान तथा प्रतिमुख रूप से कार्य करती है। समकोण त्रिभुज के समकोण के सम्मुखीन बाहु (कर्ण) के उपर अंकित समचतुर्भुज के (Square) अन्य बाहुद्वय के उपर अंकित समचतुर्भुज के समान होता हैं। समकोण त्रिभुज के भुज, कोटि तथा कर्ण में से किसी दो का परिमाण ज्ञात होने पर हम अज्ञात तृतीय भुज का परिमाण जान लेते हैं। यह विद्वान न्यूटन के गति सम्बन्धित तृतीय नियम का व्याख्यान्तर है। (As part of interpretation of Newton's law of motion)

---

(1) "अग्नीषोमौ मिथ: कार्यकारणे च व्यवस्थिते। पर्यायेण समं चेतौ प्रजीयते परस्परम् ॥"—(योगवाशिष्ठ)। इस संदर्भ में विदेशी विद्वान इमर्सन का वचन इस प्रकार है "Polarity, or action and reaction, we meet in every part af nature; in darkness and light; in heat and cold; in the cbb and flow waters; in male and female; in the inspiration and expiration of plants and animals, in the equation quantity and quality, in the fluids of the animal body; in the systole and diastole of the heart........"
(Essays, First and. Second Series, P. 22, (Compensation) (Emerson)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जिन्होंने जड़विज्ञान शास्त्र का अध्ययन नहीं किया है, जो आलोक, ताप, शब्द को आन्दोलायित गति (wave-mation) के रूप में अधिगत करते हैं, वे अत्यल्प चिन्तन द्वारा यह उपलब्धि करने में समर्थ हैं कि शब्दाख्य आन्दोलायित गति, आलोकाख्य आन्दोलायित गति, एवं तड़ित् प्रवाह जिस नियम के अन्तर्गत् क्रियाशील हैं, उसी नियमानुवर्त्तिता से चित्तप्रवाह, मानसगति (wave of thought) भी अविकल रूप से गतिमान है। शब्द, ताप, आलोक इत्यादि जिस नियम से चालित एवं उत्पन्न हैं तथा जिस नियमान्तर्गत उत्पन्न, प्रवाहित, प्रतिफलित तथा वक्रीभूत होते हैं, उसी नियम का प्रभाव चित्त एवं मानसगति पर भी प्रतिफलित, प्रवाहित तथा वक्रीभूत होता रहता है। पूज्यपाद भगवान् पतंजलिदेव कहते हैं।

"प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम्—(पातंजलदर्शन, विभूतिपाद)

अर्थात् प्रत्यय का (विज्ञानभिक्षु के अनुसार रागाभिमानी स्वकीय चित्तवृत्ति का) साक्षात्कार होने पर यह ज्ञात होता है कि किस प्रकार की मनोवृत्ति से मुख में क्या परिवर्त्तन घटित होता है ? यही संकल्पमात्र से परचित्त ज्ञान है। अन्य के मुख की भावभंगी देखकर यह अनुमान किया जा सकता है कि उसका चित्त किस प्रकार का है। अनुमान द्वारा इसे जानकर उस में संयम करना चाहिये। इस प्रकार से उसके चित्त के स्वरूप का प्रत्यक्ष हो जाता है।

"न च सावलम्बनं तस्याविषयीभूत्वात्"

संस्कार का साक्षात्कार हो जाने पर परचित्त ज्ञान अवश्यमेव होता है, उसका चित्त रागयुक्त है अथवा विरागयुक्त, यह ज्ञान हो जाता है। इतने पर भी यह ज्ञात नहीं होता कि उसका आलम्बन क्या है, वह इस समय क्या सोच रहा है ? कारण यह है कि यह जान सकना योगी के तात्कालिक संयम का विषय कदापि नहीं है। योगी ने उस समय उसके संस्कार के प्रति संयम किया था। अन्य किसी विषय को जानने के लिये संयम (एकाग्रत्व) नहीं किया था। वह क्या सोच रहा है; यह जानने के लिये पृथक् प्रणिधान अथवा संयम अपेक्षित है। कौन व्यक्ति क्या सोच रहा है, यह जानने के लिये (To read one's thought) सर्वप्रथम उसके चित्त को ग्रहण करना होगा। अनुमान के द्वारा चित्त की साधारण अवस्था से अवगत होने की आवश्यकता है, तदनन्तर उसमें मनः संयम करना होगा। इस प्रकार कर सकने से जब उसका चित्त प्रत्यक्षवत् प्रतीत हो (तब यह जानने के लिये कि वह क्या सोच रहा है) तब जानने की इच्छा लेकर संयम का प्रयोग करना चाहिये। इस प्रकार संयम प्रयोग के द्वारा जो ज्ञातव्य है, वह जाना जा सकता है।

जो नितान्त स्थूलद्रष्टा हैं, वे भगवान पतंजलिदेव के उक्त उपदेश को विज्ञान विरुद्ध समझ कर उसकी अवज्ञा कर सकते हैं, परन्तु आन्दोलायित गति तत्व को जो

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्यापकरूप से जानते हैं, उनका कथन है कि भगवान पतंजलिदेव इसके द्वारा आन्दोलयित गति की ही सूक्ष्म अवस्था का वर्णन कर रहे हैं। अर्थात् इस कथन से आन्दोलायित गतितत्व की ही पुष्टि हो रही है।[1]

"प्रवृत्यालोकान्यासात् सूक्ष्मव्यवहिंतविप्रकृष्टज्ञानम्

(पातंजलदर्शन, विभूतिपाद)।

उदर एवं उरु के मध्य में एक अधोमुखी अष्टदल कमल है। यही हृत्पद्म है। इसे रेचक प्राणायाम के द्वारा उर्ध्वमुख कर सकने पर उसमें चित्तधारणा द्वारा एक प्रकार की ज्योति का अनुभव होने लगता है। यह ज्योतिः अथवा आलोक निःस्तरंग महोदधिकल्प निष्कल्लोल समुद्र के समान प्रशस्त है। यह ज्योति जब मनोगोचर होती है, तब शोकरहित विशोका स्थिति आयत्त हो जाती है। उक्त ज्योतिष्मती प्रवृत्ति को, अन्तःकरण सारूप सात्विक प्रकाश को, किसी भी सूक्ष्म, व्यवहित (आवृत्त), एवं विप्रकृष्ट (दूरवर्त्ती) पदार्थ के साथ विनियुक्त करने पर, वह पदार्थ यथायथ रूप से प्रकाशित हो उठता है। हृदय की ज्योतिष्मती प्रवृत्ति अथवा आलोक को प्रद्दीपित करने पर अन्तःकरण में एक ऐसी प्रकाश शक्ति का उन्मेष होता है जिसके माध्यम से सूक्ष्म परमाणु प्रभृति क्षुद्रतम, व्यवहित, दूरवर्त्ती पदार्थ बुद्धिगोचर हो जाता है। चक्षुरादि इन्द्रियों की सहायता के विना, अणुवीक्षण (Microscope), दूरवीक्षण (Telescope) के आश्रय के अभाव में भी योगीगण उक्त ज्योतिष्मती प्रवृत्ति के प्रयोग (न्यास) से समस्त पदार्थ तत्व की यथार्थ अवधारणा करने में समर्थ हो जाते हैं। स्थूलदर्शी, जड़वैज्ञानिक इस तत्व को सुनकर अपना हास्य संवरण नहीं कर सकते। वे भगवान् पतंजलिदेव को विकृतमस्तिष्क मानकर उपेक्षा भी कर सकते हैं। हे विज्ञान कूपमंडूक ! जिसे तुम विज्ञान कहते हो, तुम्हारी स्वल्पप्रसारिणी मलिन दृक्शक्ति ने विज्ञान की जिस सीमा का निर्धारण किया है, वही विज्ञान नहीं है। विज्ञान एक कूप के समान नहीं है, वह असीमित समुद्र है। तुम

1. "Sound and heat likewise have much the same form of equation. Now, I maintain that the waves of thought are governed by the same laws, and can be determined by an equation of the same form ... we find the ratio of brain to brain, the relative strength which one bears to another, and then by an application of our formula we can actually determine the wave of thought, and read the minds of our fellow-creatures."

—(The Romance of Mathemetics, By P. Hamson, p. 18-19.)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पतंजलिदेव की कथा को अग्राह्य कर सकते हो, उन्हें[1] विकृत मस्तिष्क कह सकते हो, तथापि वर्त्तमान काल में जो भाग्यवान लण्डन में रहते हुये पेरिस पर्यन्त से संवाद आदान-प्रदान करते हैं, उन्हें क्या कहोगे ? क्लारवायन्ट (clairvoyant) क्रियावान व्यक्ति को भी विकृत मस्तिष्क कह सकोगे ? क्या अपने वृथा पाण्डित्याभिमान से घृणा करोगे ? भगवान् पतंजलिदेव ने जो कुछ भी कहा है, वह जड़ विज्ञान का विषय न होने पर भी विज्ञानविरुद्ध नहीं है। तुम लोग विज्ञान की मर्यादा का वर्द्धन करो, कूप का त्याग करके बाहर निकलो ! तभी जान सकोगे कि क्या सत्य है और क्या मिथ्या है !

यथार्थ मनुष्य इन्द्रियपथ में से आने वाले अविज्ञात तत्वरूप घटनापुंज का कारणानुसंधान किये विना निश्चिन्त नहीं रह सकता। मानव पंचेन्द्रिय द्वारा जो कुछ अनुभव करता है, स्वभावसिद्ध बुभुत्सावृत्ति की प्रेरणा से उसके स्वरूप का निर्णय करने के लिये नितान्त कौतूहली हो उठता है। योगी, योगजप्रज्ञाबल से सुदूरवर्त्ती देशस्थ घटना जान लेते हैं। अणुवीक्षणादि यंत्रों की सहायता लिये बिना सूक्ष्मवस्तु समूह का प्रत्यक्ष कर लेते हैं। उन्हें व्यवहित बुद्धि का विषयीभूत बना लेते हैं। अब तक पतंजलि देव के अमूल्य उपदेश समूह को विज्ञान के कूपमंडूकवृन्द ऐसे वाक्य मानते आ रहे हैं जिसे वृद्धा दादी छोटे बच्चों को सुलाने के लिये कथा के रूप में सुनाती है। परन्तु अब ऐसा मान सकना संभव नहीं रहा ! अब कोई-कोई चिन्तनशील भाग्यवान् पाश्चात्य विद्वान क्लायरवायेन्ट आदि का प्रत्यक्ष प्रमाण देखकर विघूर्णित हो रहे हैं, और हतबुद्धि होकर यह सोच रहे है कि "यह क्या ?" यह प्रत्यक्ष प्रमाण उन्हें स्तंभित कर दे रहा है।

प्रयोजन ही आविष्कार की प्रसूति है (Necessity is the mother of inevntion)। प्रकृति रूप वेद बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री, आर्य, म्लेच्छ, जैन, बौद्ध, आस्तिक-नास्तिक, सभी के समक्ष अपना स्वरूप प्रकटित करता रहता है। सभी को समान रूप से शिक्षा प्रदान करता है। क्या सभी इसे यथायथ रूप से देख सकते हैं ? क्या सभी उपदेश की यथार्थ उपलब्धि कर पाते हैं ? वृक्ष से सेव के फल के पतन को केवल विद्वान न्यूटन ने ही नहीं देखा था। यह व्यापार केवल न्यूटन को ही दृष्टिगोचर नहीं हुआ था, किन्तु न्यूटन ने ही सर्वजनोपेक्षित इस सामान्य प्राकृतिक घटना

1. पाश्चात्य विद्वान् A Smiee अपने ग्रंथ में Clairvoyance शीर्षक में कहते हैं "What are we to infer as probably taking place when a sensitive—sitting entertained in London becomes cognizant of some transaction going on in Paris"
—(The Rationale of Mesmarism, By A. Smee, p 134)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

का इतने आदर पूर्वक परीक्षण क्यों किया? न्यूटन का प्रयोजन था, इसलिये। प्रयोजन था, तभी न्यूटन इस घटना का तत्वानुसन्धान किये बिना नहीं रह सके। उन्होंने इसी कारण अपने देश में मध्याकर्षण सिद्धान्त (Gravitation) का आविष्कार किया। क्लेयेयरवायन्स द्वारा सुदूरवर्ती घटनाओं को जाना जा सकता है। जो इसे प्रत्यक्ष कर सकते हैं, क्या उन्होंने यह जानने का प्रयत्न किया है कि यह कैसे होता है? बुभुत्सा अथवा जिज्ञासा मनुष्य का धर्म है। मनुष्य का प्रयोजन है। अतएव जो यथार्थ मनुष्य हैं, वे क्लेयेयरवायन्स का कार्य देखकर इसकी कारणानुत्संधित्सा में प्रवृत्त हो सकते है। इसके कार्य को देखकर कतिपय पाश्चात्य विद्वान इसके कारण को जानने की चेष्टा करते रहते हैं। वैज्ञानिक युक्ति के द्वारा इसके रहस्य उद्भेदन में यत्नशील हैं। इस संदर्भ में मैं विद्वान सिनेट एवं ज्ञानबोध के कथन से पाठकगण को अवगत कराना उचित समझता हूँ। विद्वान सिनेट ने प्रधानतः द्विविध कारणों का अनुमान किया है। विद्वान पण्डित Sinnet का अनुमान है कि ताप, आलोक, प्रभृति आन्दोलायित गति (Wave motion) सादृश्य प्रतिपत्ति मूलक है। तेजोमय वस्तु समूह जिस प्रकार से ईथर में प्रवृत्ति या आन्दोलन का प्रेरण करता है, तथा ईथर जिस प्रकार से इस प्रवृत्ति अथवा आन्दोलन को हमारी आखों अथवा नयनेन्द्रिय तक पहुँचाता है, उसी प्रकार किसी देश या किसी भी व्यापार (Transaction) में संघठित हो रहे घटना चक्र को सर्वदिक् व्यापक किसी भी मार्ग अथवा आवपन में तरंगायित करते हुये सूक्ष्मतर ऐन्द्रियिक शक्ति में प्रतिफलित करने लगता है। उसमें व्यापारानुरूप भावनाख्य संस्कार को संक्रामित करता है। विद्वान सिनेट का द्वितीय अनुमान है कि सूक्ष्मशरीर (Sensitive Body) से कोई सूक्ष्म अध्यात्मिक रश्मि (Psychic Aura) बहिर्गत होकर इच्छित स्थान में (विषय देश में) जाकर उस घटनाचक्र (विषय) को ग्रहण करती है। जो पदार्थ सूक्ष्मशरीर से बहिर्गत होता है, वह सात्विकाहंकाराधिष्ठित् आध्यात्मिक रश्मि का अंग विशेष है। अथवा सात्विक अहंकार (True Ego) अपने भौतिक मन्दिर का त्याग नहीं करता और अपने स्थान पर ही स्थित रहते हुये सर्वव्यापक (Luminiferous Ether) या उसमे सूक्ष्मतर किसी मार्ग द्वारा इच्छित स्थान (विषय प्रदेश) में तडित् शक्ति प्रवाह संचालित करने लगता है।[1]

---

1. "It must be one of two things. Ether the transaction throws off emantions or vibrations of some kind or another into some medium pervading all space. Just as the luminous bodies throw off vibrations into the Ether, and where these strike the perceptions or finer senses of persons no matter at what distance,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विद्वान जानवाव कहते हैं कि यह स्पष्टतः प्रमाणीकृत हो चुका है कि मन ही दर्शन, श्रवण करता है। वही स्वाद तथा गन्ध ग्रहण करता है। स्वर्शानुभव भी उसके द्वारा ही सम्पन्न होता है। हमने यह भी प्रमाणित किया है कि तड़ित् (Electriciy) ही एकमात्र वस्तु है जिसके साथ मनः संसर्ग होता है। अतः यह

---

they give rise to corresponding impressions, just as the rays emanating from a star affect the vision of those endowed with vision, no matter at what stupendous distance. & there is no essential and inherent absurdity in such a hypothesis, any more than in the actual facts having to do with the transmission of light ....The other alternative hypothesis in regard to our simple case of clairvoyance as between London and Paris would be that something material in the highest sense of the word not physical as belonging to the orders of matter perceptible to the five sences-but something material, appertaining probably to the psyhic nature of the sensitive, is projected under the operation of a current of thought or influence from the mesmerist or from the sensitive, assumiug that to be awakened in some way by suggestion to him, form the place in which he is seated to the distant scene he is required to observe, Now that something which is projected may be either some portion of the psychic aura in which for the time being the regal ego or spiritual conciousness of the person concerned may be seated, just as it is seated in the body during the activity of the body, or it is theoretically conceivable that the true ego, withont quitting the physical organism altogether, may project in the direction to be observed some current of magnetic infiuence setting up a channel if that expression w ll help to pass the idea from my mind to my reader through the all pervading medium whatever it is, the luminiferous ether, or something finer still, which is the suitable medium in nature for the vibrations which convey impressions to the psychic organism"

—(The Rationale of Mesmerism,p. 134–36, By J, Dod)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनायास ज्ञात हो जाता है कि इस तड़ित् नामक पदार्थ द्वारा ही मन में संवेदन (Sensation) संचारित (Transmitted) होता है। हम इसी के द्वारा दर्शन श्रवण आदि करते हैं। जब दर्शनशक्ति मन में अधीष्ठित है, तब यह स्पष्ट हो जाता है कि हम कभी भी चक्षु के बहिः स्थित किसी पदार्थ का दर्शन नहीं कर सकते। हम जो कुछ देखते हैं, वह वस्तु का स्वरूप कदापि नहीं है, वह वस्तु का प्रतिविम्ब है। पूर्वोक्त तड़ित् नामक पदार्थ इस प्रतिविम्ब का वाहक है। वही प्रतिविम्वोद्ग्राही है। तड़ित् शक्ति ही चाक्षुष स्नायु (Optic Nerve) के माध्यम से मन के समीप आनीत वस्तु प्रतिविम्ब को मस्तिष्क अथवा मन के स्थान में परिदृष्ट कराती है। तड़ित् सर्वगति है। यह निखिल वस्तु समूह के मध्य में प्रवेश करने में समर्थ है। वायु भी करोटि, शिरोस्थि (Carnium) में प्रवेश नहीं कर सकता। वायु भित्ति (Wall) का भेदन नहीं कर सकता। तड़ित् भित्ति का भी भेदन[1] कर सकने में समर्थ है। यदि हमारे स्नायु विधान को तनूपा अथवा स्नायुवर्चदा शक्ति के द्वारा परिपूर्ण कर सकने पर हमारा मस्तिष्क धनधर्मी[2] (Positive) तथा बाह्य तड़ित् के साथ सर्वतोभावेन समीकृत अवस्था में उपनीत हो सके, उस अवस्था में दूरदर्शन-दूरश्रवणादि शक्तियाँ विकसित हो जाती हैं। इस अवस्था में हम Clairvoyant हो जाते हैं। स्नायुविधान तनूपा अथवा स्नायुवर्चदाशक्ति के द्वारा परिपूर्ण (Charged and even Surcharged) होते ही करोटि छिद्र के द्वारा (उक्त शक्तिरूप पदार्थ)

---

1. वेद ने अग्नि को देवगण दूत अथवा हव्यवाहु कहा है। "अग्नि दूत वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्"—(ऋक्संहिता १।२१।१२)

तड़ित्, सौदामिनी अथवा विद्युत अग्नि का ही रूपान्तरण है। तर्कशास्त्र ने भौम, दिव्य, सौदर्य एवं आकरज विषयसंज्ञक तेज के रूप में इसे चतुर्धा सिभक्त किया है "विषयसंज्ञकं चतुर्विधम्। भौम दिव्यमुदर्य माकरजं च। ....दिव्यमनिन्धनं सौरविद्युदादि"—(प्रशस्तपादाचार्य कृत् पदार्थधर्म संग्रह) सौरतेज, विद्युत आदि अग्नि के दिव्य तेज हैं।

"तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि। आयुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि। वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो में देहि। अग्ने यन्मे.........।" (शुक्लयजुर्वेद संहिता)

अर्थात् "हे अग्नि! तुम स्वभावतः तनूपा (शरीररक्षक) हो, अतः हमारे शरीर की रक्षा करो। अग्ने तुम आयुर्दा-आयुर्दाता हो, वर्च अर्थात् सात्विक तेज के दाता हो। तुम हमें वर्चः दान करो। अग्नि! हमारी देह के जो अंग अपूर्ण हों, उन्हें तुम पूर्ण करो।" इसी कारण हम "Nervovital Fluid" को तनूपा अथवा स्नायुवर्चदा कहते हैं।

2. शास्त्रीय भाषा में चित्त का निरोध परिणाम इसे ही कहते हैं।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सरल रेखाक्रम से चतुर्दिक विकीर्ण होने लगता है। यह स्नायु विधान को अत्यन्त स्वच्छ (Transparent) कर देता है। समन्तात् विकीर्यमाण उक्त आन्तर तड़ित् शक्ति निखिलद्रव्याभ्यन्तर प्रवेशिनी, स्वच्छ बाह्य तड़ित के साथ समायुक्त होकर विश्व की प्रतिच्छाया (The image of the whole universe) चित्तमुकुर पर प्रतिफलित करने लगती है। अतः कृतसंयम, समाहित योगी इन्द्रिय सहाय्य के अभाव में भी स्थूल; सूक्ष्म, व्यवहित, विप्रकृष्ट समस्त वस्तुसमूह का प्रत्यक्ष कर सकते हैं। जो द्रव्य समूह साधारण दृष्टि में किरणाभेद्य, अस्वच्छ (opaque) प्रतीत होते हैं, वे निरुद्ध चित्तवृत्ति योगी के लिये स्वच्छ रूप हो जाते हैं।[1]

---

1. "It is evident that Seeing, Heariug, Feeling, Tasteing and Smell-ing belong exclusively to the mind, And as we have already proved that electricity is the only substance that can come in contact with mind, so it is through the agency of this fluid that sensations are transmitted to the mind. Hence it is through the medium of electricity that we see, hear, feel, taste and smell. The power of sight being in the mind, it is evident that we never saw anything out of our eyes... ---By the agency of electricity, it is conveyed through the optic nerve to the mind where it is seen. Hence, we never saw a piece of matter, but only its shadow, the same as when you look into a mirror, it is not yourself, but your image that you see. Electricity is that substance that posses through all other substances. Air can not pass through your Carnium, nor through these walls, nor metallic substances....... . Now if your nervous system could be charged with the nervo–Vital–Fluid, so as to render the brain positive and thus bring it into an exact equilibrium bala-nce with external electricity, then we should be clairvoyant. Because the nervous system being duly changed, and even sur-charged, the great quantity of this fluid passing in right lines from the mind as a common centre, and in every direction th-rough the pores of the skull, renders it transparant. Uniting with external electricity which passes through these walls and all substances, which are also transparent, the image of the whole

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यह निःसंदिग्ध है कि यदि भारतवर्षीय लोग मनुष्य हैं, तब अत्युच्च चिन्तन-शील पाश्चात्य वैज्ञानिक देवता हैं। इतने पर भी यह दुःखप्रद तथ्य है कि विदेशी विद्वानों का चिन्तन स्थूल जड़ जगत् के बाहर संक्रमण नहीं कर सका है। यदि इनका चिन्तन क्षेत्र केवलमात्र यह जड़ जगत ही न होता, उस स्थिति में पाश्चात्य वैज्ञानिक इस जगत् का पूर्ण हितसाधन करने में समर्थ होते। यह कहा जा चुका है कि आध्यात्म विज्ञान जड़ विज्ञान की सूक्ष्मावस्था है। उसका व्यापक रूप है। यदि पाश्चात्य विद्वान इस प्रकार से क्रमशः जड़ विज्ञान की उन्नति कर सकते (उसकी सूक्ष्मावस्था में विचरण कर सकते) उस स्थिति में वे किसी न किसी समय आध्यात्म विज्ञान के चरणप्रान्तर में उपस्थित हो जाते। अनन्यचित्त होकर, विपुल परिश्रम तथा एकान्तिक भक्ति के द्वारा विदेशी विद्वानों ने जड़ विज्ञान की जो सेवा की है, जिस जड़ विज्ञान को उन्होंने अभाव मोचन का एकमात्र साधन माना है, जिसकी उपासना में वे अभी भी रत हैं, वह जड़ है, पराधीन है, उसमें स्वयंप्रेरित रूप से किसी भी कार्य निष्पादन की शक्ति नहीं है। वह ईप्सितम की प्राप्ति का उपयुक्त साधन भी नहीं है। यह तथ्य जब उन्हें ज्ञात हो सकेगा, तभी वे आध्यात्म विज्ञान वारिधि का अवगाहन करने में समर्थ हो सकेंगे। तभी वे ऋषिगण के समान आध्यात्म विज्ञान की भक्तिपूर्वक पूजा करने में समर्थ होंगे। उसी दिन उन्हें अमूल्य शास्त्रोपदेश यथार्थ पदार्थ रूप से स्वीकृत हो सकेगा। प्रतीत हो रहा है कि वह दिन अधिक दूर नहीं है। यदि वह दिन दूर होता तब थियोसाफिस्ट आन्दोलन का प्रादुर्भाव कैसे होता? स्थूल जड़ विज्ञान के दृष्टिकोण से उपेक्षित शास्त्रीय सूक्ष्म तत्वोपदेश उन्हें हृदयग्राही क्यों लगता? उन उपदेशों का विज्ञान संगत्व दिखलाने के लिये वे प्रयत्न-शील क्यों होते? कोई-कोई पाश्चात्य विद्वान यह क्यों कहते कि जगत्गुरु ऋषियों के उपदेशानुसार कार्य करने पर स्थिर कल्याण साधित होता है?

अलौकिक प्रत्यक्ष का कारण प्रदर्शन करते हुये पाश्चात्य विद्वान Sinnet तथा John Dods ने जो कुछ कहा है, वह अनेकांश में शास्त्रोपदेश के ही अनुरूप है। श्रुति के अनुसार मन दूरंगम, अतीत, अनागत, वर्त्तमान व्यवहित, विप्रकृष्ट सभी पदार्थों का ग्राहक है। मन ही ज्योतिसमूह की, चक्षुरादि इन्द्रियों की एक

---

universe, as it where, in this transparent form, is thrown upon the mind and is there seen, and seen too, independent of the Ratina. On this principle the whole of this objects which are opaque to natural vision are rendered transparent to the clair-voyant—(वही, पृ० ५०-५२)

LIBRARY
Jangamwadi Math, Varanasi
ACC No. 8599

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अद्वितीय ज्योतिः है ! जाग्रतकाल में मन अपने सर्वार्थताधर्म के कारण दूर गमन करता है।[1]

अलौकिक प्रत्यक्ष का स्वरूप किंचित परिणाम में हृदयंगम करने के लिये सर्व-प्रथम लौकिक प्रत्यक्ष का स्वरूप जानना होगा। स्थूलावलम्वन करके ही सूक्ष्म के समीप पहुँचा जा सकता। वाह्यकरण ही अन्तःकरण की वाह्यावस्था है। अन्तःकरण का स्थूलभाव है। राजकर्मचारीगण राजा की ही भिन्न-भिन्न शक्ति हैं। एक मुख्य राज-शक्ति की ही भिन्न-भिन्न उपाधि है राजकर्मचारी।[2] चक्षु-कर्णादि इन्द्रियाँ भी मन की ही भिन्न-भिन्न शक्ति है। मन की ही भिन्न-भिन्न उपाधि है। मन की शक्ति किस प्रकार की है, यह न जान सकने पर अलौकिक प्रत्यक्ष के स्वरूप को जान सकना असं-भव है। ऐन्द्रिक अथवा बाह्यप्रत्यक्ष का स्वरूप जानने के लिये जैसे इन्द्रियों की कार्य-कारिता का परिदर्शन प्रयोजनीय है, उसी प्रकार अलौकिक प्रत्यक्ष तत्व जानने के लिये मन की शक्ति को जानना आवश्यक हैं।

श्रुतिदेवी से जिज्ञासा करने पर यह ज्ञात हो सकता है कि मन की शक्ति किस प्रकार की है ? यह साधारण व्यक्ति के लिये अगम्य विषय है ! मन की शक्ति इतनी प्रवल है कि उसका विवरण देने पर केवल योगी ही उस पर विश्वास कर सकता है।

---

(१) यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति। दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु"—(शुक्लयजुर्वेद संहिता)

भावार्थ—मन ही सर्वप्रकार की सुकृति तथा दुष्कृति का उत्पत्तिस्थान है। शिव-संकल्प मन ही निखिल कल्याण का कारक है। अशिव संकल्प अथवा पाप प्रवण मन दुर्गति का हेतु है। जो आत्मकल्याण चाहते हैं, उन्हें उस प्रक्रिया में रहना चाहिये जिससे मन शिवसंकल्प हो, धर्मप्रवण तथा शुद्ध हो। चिरशान्तिलिप्सु अथवा उन्नति चाहने वाले व्यक्ति को निरन्तर यह प्रार्थना करनी चाहिये कि जो मन जाग्रतकाल में स्वीय सर्वार्थता धर्म के कारण दूरगमन करता है, नाना विषयों में विचरण करता है, जो मन दैव—आत्मग्राहक है, निद्राकाल में जो विषयों से प्रत्यागमन करता है, जो दूरंगम है, जो ज्योतिः है, सभी की ज्योति है, चक्षुरादि इन्द्रियों का प्रकाशक है, अर्थात् जो मुख्य इन्द्रिय है, मेरा वह मन शिवसंकल्प हो !

(२) "शक्तिभेदेऽपिभेदसिद्धौ नैकत्वम्"—(सांख्यदर्शन २।१४) "भवतुपाधिभेदः शक्तिभेदस्त्ववश्यं वक्तव्यः, स च सत्य इति नानात्वमपि सत्यम्"—(सांख्यसूत्र-वृत्ति) । "एकस्यैव मुखेन्द्रियस्य मनसोऽन्ये दश शक्तिभेदा इत्याह"—(सांख्यप्रवचन भाष्य)

Jangamwadi Math, Varanasi
ACC No. ....

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जिसने श्रुतिदेवी अथवा श्रुतिचरण सेवक साक्षात्कृतधर्मा ऋषिगण का चरण सेवन नहीं किया है, उसे किसी भी पदार्थ का यथार्थ तत्वज्ञान नहीं हो सकता। मन की शक्ति अज्ञात् है, अतः अलौकिक प्रत्यक्ष पर विश्वास नहीं है, इसी कारण योग विभूति उपहास की वस्तु हो गई है। इसी कारण पाश्चात्य विद्वान अगस्त कामट असंकुचित हृदय युक्त होकर ऋषि तथा योगी को भण्ड कहते हैं। मन की शक्ति के परिमाण से वेदचरण सेवक आर्यगण अवगत थे। इसी कारण उन्होंने योगाभ्यास विकसित मानस शक्ति के द्वारा स्थूल दृष्टि जड़ विज्ञान परिचित प्राकृतिक नियमों पर आधिपत्य स्थापित कर लिया था। इस शक्ति पर तथा इस आधिपत्य पर जन-साधारण को विश्वास नहीं है, वे इसे असंभव मानते हैं। शुद्धचित्त शिवसंकल्प योगी चित्त को एकाग्र करके संयम के द्वारा[1] अतीत, अनागत, व्यवहित, सर्व प्रकार की वस्तु का सम्यक् रूप से साक्षात्कार करने में समर्थ हो जाते हैं। इसी संकल्प शक्ति के माध्यम से विश्वामित्र आदि ऋषिगण बहुःप्रजा सृष्ट कर सके थे। तैत्तरीय आरण्यक में उक्त है :—"मनसा साधु पश्यति मनसा ऋषयः प्रजा असृजन्त"

इसके द्वारा यही कहा गया है। पाश्चात्यों में से कोई-विद्वान् योग की कतिपय निम्न भूमिस्थ विभूतियों को देखकर उसके प्रति आस्थावान हो जाते हैं, किन्तु भगवान् पतञ्जलिदेव ने जिस उद्देश्य से इन अमूल्य वचनों का उपदेश दिया था, उस का सन्देश किसी भी पाश्चात्य योगासक्त विद्वान प्राप्त कर सकने में अक्षम रहे हैं। भगवान कहते हैं :—"ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः"

अर्थात् योग की उक्त विभूतियां व्युत्थानावस्था में सिद्धि के रूप में गण्य होती हैं, तथापि वे समाधि काल में उपसर्ग है, मुक्तिप्रद समाधि की विघ्न हैं। अन्तराय हैं और समाधिनाशक हैं। ऐसे दो एक पाश्चात्य विद्वान अवश्य हैं, जो अपने विचारों के अंकन के समय भगवान् पतंजलिदेव के उक्त उपदेश ध्वनि की प्रतिध्वनि को

---

(१) संयम शब्द का तात्पर्य है एकवस्तु विषयक धारणा, अथवा ध्यान समाधि। पूज्यपाद भगवान पतंजलिदेव कहते हैं "त्रयमेकत्र संयमः" अर्थात् धारणा, ध्यान एवं समाधि रूप साधन की तांत्रिकी परिभाषा का नाम है संयम (Concentration of mind, a term applied to the last three stages of yoga) यहां भगवान् पतंजलिदेव संयम शब्द का प्रयोग करते हैं, इसका तात्पर्य है धारणा, ध्यान एवं समाधि,

ध्यान, धारणा तथा समाधि का लक्षण—"देशबद्धश्चित्तस्य धारणा"—(पातंजल दर्शन, विभूतिपाद)। पतंजलिदेव ने यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि रूप अष्टांग योग का उपदेश किया है। इसमें यमादि

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अंकित करते हैं; किन्तु कार्यतः उक्त उपदेश का पालन करने वाले ऐसे पाश्चात्य विद्वान का नाम अबतक मैंने नहीं सुना है।[1]

पंच को वाह्यसाधन कहते हैं। धारणा ध्यान तथा समाधि ही अन्तरंग साधन हैं। चित्त को देश-विदेश में (नाभिचक्र, नासिकाग्र, हृत्पद्म प्रभृति आध्यात्मिक प्रदेश में अथवा शास्त्रोक्त किसी भी मूर्ति में, किसी भौतिक अथवा पांचभौतिक पदार्थ में निबद्ध रखना ही धारणा है। उक्त है :—

"प्राणायामेन पवनं प्रत्याहारेण चेन्द्रियम्।
वशीकृत्य ततः कुर्याच्चित्तस्थानं शुभाश्रये ॥
एषा वै धारणा ज्ञेया यच्चितं तत्र धार्यते ॥"

धारणा सुखसाध्य साधन नहीं है। धारणा नामक योगांग को आयत्त करने के लिये शास्त्रोपदेश के अनुसार रागद्वेष से विनिर्मुक्त होना, मैत्र्यादि भावना के द्वारा (परदुःख, परसुख तथा पाप देखकर यथाक्रम से करुणा, मैत्री, मुदिता तथा उपेक्षा करना) सर्वप्रथम चित्त प्रासाद की उपलब्धि करना होगा, चित्त को निर्मल करना होगा, यम नियमादि पंच वहिरंग साधनानुष्ठान करना होगा। यह करने से धारणा का अधिकार प्राप्त होने लगता है। धारणा सिद्ध होने पर ध्यान एवं समाधि की सिद्धि हो जाती है। धारणा की गाढ़ अवस्था है ध्यान। ध्यान की प्रगाढ़ स्थिति को समाधि कहते हैं। भगवान पतंजलिदेव कहते हैं— "तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्" -'तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः" अर्थात् जिस देश में जो विषय चित्त में धृत होता है, जिस पदार्थ को ध्येय रूप में चित्त निवद्ध करता है, उस देश या विषय का त्याग करके यदि चित्त अन्य देश अथवा विषयान्तर में नहीं जाता, यदि ध्येय विषय में ही चित्त की एकतानता हो जाती है, यदि अनन्तरित अविच्छिन्न रूप से ज्ञान प्रवाहित होता रहता है, तव वह अवस्था ही ध्यान है। जव यह ध्यान शुद्ध ध्येय वस्तु को उद्‌भासित अथवा प्रकाशित करता है तव "मैं ध्यान करता हूँ" इस प्रकार का भेदज्ञान विलुप्त हो जाता है, वह स्थिति समाधि है। यहां यही कहना प्रयोज्य है कि यदि कोई चिन्तनशील, विश्वहिताकांक्षी, शिवसंकल्प बुद्धिमान धीर व्यक्ति मनोयोग से पातंजलोक्त योगसूत्र का अनुशीलन करे, तो उसे यह स्वीकार करना ही होगा कि यह योगसूत्र जगत् का अमूल्य रत्न है। इसकी तुलना में जड़विज्ञान अवोध शिशु की स्थिति रखता है!

(१) तथापि योगशक्ति विशिष्ट पाश्चात्य पुरुषों की अन्तरतम से श्रद्धा करता हूँ। योगाभ्यास द्वारा इन्द्रियों की शक्ति को शुद्ध करने पर जगत का अशेष उपकार कर सकने की योग्यता प्राप्त हो जाती है। योगाभ्यासरत पाश्चात्य चिकित्सकों का दृष्टान्त देखने से इस बात की यथार्थता प्रतिपन्न होती है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अध्यात्म विज्ञान ही जड़विज्ञान का व्यापक रूप है। यह स्मरण रखना चाहिये कि जड़विज्ञान में चरमोन्नति किये विना अध्यात्मविज्ञान के चरण स्पर्श का अधिकार भी प्राप्त नहीं होता। मैं अध्यात्मज्ञान विद्वेषी, जड़विज्ञानानुशीलन विमुख; तथापि मुख से विज्ञान, विज्ञान का चीत्कार करते रहने वाले स्वदेशी भारतवासी भ्रातृवृन्द को जाग्रत करने के लिये इस प्रसंग की अवतारणा कर रहा हूँ। जो अध्यात्मविज्ञान पारावार के पार हो चुके हैं, वे जड़विज्ञानकूप में अवगाहन कर चुके थे अथवा नहीं, यही इस प्रसंग का मुख्य उद्देश्य है।

"अब तक हमने जो कुछ समझा है, प्राकृतिक शक्ति की इयत्ता का जैसा निर्धारण किया है, वही पर्याप्त है। इसके अतिरिक्त प्रकृति की शक्ति नहीं है। इससे अतिरिक्त अवस्था भी नहीं है।" यह अज्ञोचित विश्वास है। इस विश्वास का परिहार कर देना, इसे छोड़ देना उचित है। ऐसे प्राकृतिक नियम हैं, ऐसी प्राकृतिक अवस्थाये हैं, जो आज भी हमारी बुद्धि से परे हैं, ऐसा विश्वास रखना चाहिये। यह विश्वास हृदय में रखकर प्राकृतिक रहस्यों का भेदन करने की चेष्टा करने से विदेशी विद्वान यह उपलब्ध कर सकेंगे कि अध्यात्म विज्ञान ही जड़ विज्ञान का असंकीर्ण तथा प्रशस्तरूप है। जिस प्राकृतिक नियमानुवर्त्तिता के कारण दूरस्थित ज्योतिर्मय पदार्थ से आलोक किरण अथवा आलोकाख्य आन्दोलायित गति प्रवाहित होकर हमारे नेत्रों पर आघात करती हैं, उसी प्राकृतिक नियम से सभी वस्तु (चुम्बक लौहाकर्पण न्यायानुसार) अन्य सभी वस्तुओं का आकर्पण करती रहती है। इसी प्राकृतिक नियम के प्रभाव से योगीगण दूरस्थित वस्तु का सन्दर्शन कर सकने में समर्थ होते हैं। वे चक्षुरादि वाह्यकरण की सहायता लिये बिना सूक्ष्म एवं व्यवहित वस्तु का मनः प्रत्यक्ष करने में सक्षम होते हैं। अब यह ज्ञातव्य एवं विवेचनीय है कि अस्वच्छ वस्तु, व्यवहित वस्तु भी योगी के लिये प्रत्यक्ष है, जड़ विज्ञान की सहायता से इसे कैसे समझा जा सकता है? इसकी वैज्ञानिक उपपत्ति के पूर्व यह देखना होगा कि अस्वच्छ अथवा किरणाभेद्य वस्तु नयनेन्द्रिय का विषय है अथवा नहीं?

ज्योतिर्मय (Luminous), स्वच्छ अथवा प्रसाद गुण विशिष्ट (Translucent) एवं अस्वच्छ अथवा मलीमस (opaque) वस्तु रूप से वस्तुमात्र को त्रिविध श्रेणी में विभक्त किया गया है। जो वस्तु अपनी प्रभा से प्रभावान है, जो निष्प्रभवस्तु को प्रकाशित करे, वह ज्योतिर्मय है। जिस वस्तु में से प्रकाश किरण अबाध रूप संचरित हो सकती हैं वह स्वच्छ है। जो तद्विपरीत धर्माक्रान्त हैं, जिनमें आलोक किरणों का प्रवेश नहीं हो सकता, वे अस्वच्छ (किरणाभेद्य) [1] हैं। जिन

---

1. "The term transparent or diaphanous is appllied to all bodies which at all fransmit objects cannot be distinctly seen"—(Natural Philosophy, By Ganot, P. 321)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वस्तु समूह से होकर आलोक किरणें अबाध रूप से संचरण करती रहती हैं, वे स्वच्छ पदार्थ अवश्य हैं, किन्तु स्थूल दृष्टि से सम्पूर्णतः ऐसी वस्तु (स्वच्छवस्तु) प्राप्त नहीं हो सकती । कांच, जल, विशुद्ध वायु यद्यपि स्वच्छ हैं, तथापि वे सब अपने अंदर से जा रहीं आलोक किरणों को किसी परिमाण में सोख लेते हैं, उनका ग्रास कर लेते हैं । अचित् जगत् में ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है जो सम्पूर्णतः अस्वच्छ हो (There are none which are quite opaque) स्थूलावस्था में जो जैसा अस्वच्छ प्रतीत होता है, सूक्ष्मावस्था में वह वैसा अस्वच्छ नहीं रह जाता[1]

वस्तु की स्वच्छता एवं अस्वच्छता का कारण—जगत् की कोई वस्तु स्वच्छ प्रतीत होती है तो अन्य वस्तु में अस्वच्छता दृष्टिगोचर होती है । ऐसा क्यों होता है ? विज्ञान से यह जिज्ञासा करने पर विदित होता है कि जो वस्तु आलोक प्रति-ष्टम्भक रासायनिक धर्मयुक्त है, वह अस्वच्छ है । जो इससे विपरीत धर्म से युक्त है, वह स्वच्छ है । नैयायिकगण ! आप विज्ञान के इस उत्तर के सम्बन्ध में क्या कहते हैं ? जिन वस्तुओं में से आलोक संचरण नही होता, वे अस्वच्छ (opaque) हैं । अब यह ज्ञातव्य है कि किस वस्तु में से आलोक का संचरण होता है और किसमें से नहीं होता, यह नियम क्यों है ? अस्वच्छता तथा स्वच्छता का हेतु, कारण क्या है ? विज्ञान इसके उत्तर में कहता है कि जिसमें से होकर आलोक संचरण नहीं करता, जों आलोक गति के रोधक रासायनिक गुण से युक्त है, वह अस्वच्छ है । जो इससे

विद्वान् गैनो Transparent तथा Translucent रूप से स्वच्छ पदार्थ को भागद्वय में विभक्त करते हैं । जिन वस्तुओं के द्वारा अन्य वस्तु को स्पष्टरूप से देखा जा सकता है, वह स्वच्छ Transparent है । जिसके भीतर से अन्यवस्तु को स्पष्टतः नहीं देखा जा सकता वे ईषत् स्वच्छ (Translucent) हैं ।

1. "Of all bodies which transmit light, none can be said to be perfectly diaphanous; all extinguish, or absorbe, a portion of the light which impinges on them. The most transparent, such as air, water, glass, gradually extinguish the light which penetrates them, and, if their thickness be considerable, they may weaken it so much that no impression is produced on the eye ....just as there are no perfectly transparent substances, so, too, there are none which are quite opaue; at any rate when the thickness is very small"—(Natural Philosophy, P 321-22, by Ganot)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विपरीत है, जो स्वयं से होकर आलोक का संचरण होने देता है, वह स्वच्छ है। यहाँ यह कहना होगा कि विज्ञान ने हमारे प्रश्न का ही पुनरुच्चारण किया है। यह उत्तर न होकर प्रश्न की ही पुनरुक्ति है, पुनर्वचन (Repetition, twofold interpretation of the same question) है। इसी प्रदर्शित हेतु से साध्यसम हेत्वाभास[1] प्रकट होता है। यही है petito principii अथवा केवल यही क्यों, प्रकृत

१. "हेतुलक्षणाभावादहेतवो हेतुसामान्याद्धेतुवदाभासमानास्त इमे"—(वात्स्यायन-भाष्य) अर्थात् जो हेतुलक्षण विहीन है, अतः जो प्रकृत रूप से अहेतु है, हेतु से सामान्य होने के कारण जो आपात् दृष्टि से हेतुरूप विदित होता है, वह आभासमान अथवा दुष्टहेतुक ही हेत्वाभास (Fallacy) है। पूज्यपाद भगवान गौतम ने सव्यभिचार विरुद्ध, प्रकरणसम, साध्यसम तथा कालातीत रूप से हेत्वाभास का निर्देश अंकित किया है। "सव्यभिचारविरुद्धप्रकरणसमसाध्यसमातीतकाला हेत्वाभासाः"— (न्यायदर्शन)

पूज्यपाद श्रीयुत गंगेशोपाध्याय कहते हैं—"ते च सव्यभिचार विरुद्ध-सत्प्रतिपक्षासिद्धवाधिताः पंच"—(तत्वचिन्तामणि, अनुमानखंड) अर्थात् सव्यभिचार विरुद्ध, सत्प्रतिपक्षित, असिद्ध तथा बाधित, ये हेत्वाभास के पंचरूप हैं। यह भगवान गौतमोक्त पंच हेत्वाभास के ही पर्यायान्तर हैं। अप्रसिद्ध तथा समानार्थक हैं। "साध्यविशिष्ट साध्यत्वात् साध्यसमः"—(न्यायसूत्र)

जिस साध्य के साधनार्थं जो हेतु प्रदर्शित है, साध्य—साधनीय (To be proved) से विशिष्ट भिन्न नहीं है, जिस साध्य के साधनार्थ जो हेतु प्रदर्शित होता है, यदि वह सिद्ध नहीं होता, तब वह प्रदर्शित हेतु न होकर साध्यसम अथवा असिद्धाख्य हेत्वाभास कहा जाता है। पाश्चात्य न्यायशास्त्र में Fallcy को पंचधा विभक्त किया गया है। विद्वान मिल कहते हैं :—

"We have thus five distinguishable classes of fallacy which may be expressed in the following synoptic table (A) Fallacies a priori (B) Fallacies of obseration. (C) Fallacies of generalisation (D) Fallacies of Ratiocination (E) Fallacies of Confusion." Peiitio principii भी Fallacies of confusion के ही अन्तर्गत है। विद्वान बेन कहते हैं "the secod division is petitio principii otherwise called 'arguing in a circle., Aristotle ने इस Fallacy को पांच भागों में विभक्त किया है। "when one begs the very thing that ought to be demonstrabted" Petito princile का यह प्रथम विभाग है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जिज्ञासुगण किसी पदार्थ की तत्व जिज्ञासा को चरितार्थ करने के लिये ही जड़ विज्ञान की शरण लें ? इससे यह स्पष्ट होगा कि जड़ विज्ञान उनके लिये किसी भी पदार्थ से सम्बन्धित तत्व जिज्ञासा को पूर्णतः विनिवृत्त करने में समर्थ नहीं है। श्रुति के उपदेशानुसार तत्व एकाधिक नहीं है।[1] जो उस एक को अनेक समझते हैं, दुर्भेद्य मायावरण का भेदन कर सकने में असमर्थ होकर इसी एक को असत् अथवा अज्ञेय कहते हुये उसका प्रत्याख्यान करते हैं, जो इस तथ्य से अवगत नहीं हैं कि उस एक को जानने के लिये तथा तत्व जिज्ञासा को चरितार्थ करने के लिये किस प्रकार की साधना की आवश्यकता है, उनके द्वारा तत्व जिज्ञासा को चरितार्थ कर सकना असंभव सा है। जड़ विज्ञान कहता है कि "यह सब क्यों होता है ?" यह उत्तर देना मेरा कार्य नहीं है। वह why का कोई उत्तर नहीं दे सकता। कैसे होता है ? (How) इसका उत्तर जड़ विज्ञान के पास है। अतः मैं इस विज्ञान को जड़ विज्ञान कहता हूँ।

---

१. "इन्द्र मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः समुपर्णी गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा वहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥"—(ऋग्वेदसंहिता)
कार्य का कारणानुसंधान करते करते जो परम-कारण को देखने में समर्थ हो जाते हैं- जिन्होंने परमात्मा का दर्शन प्राप्त किया है, उनके रागद्वेषादि दोषरहित हृदयगगन में परमात्मा के अतिरिक्त अन्य पदार्थ की स्वतंत्रसत्ता प्रतिभात नहीं होती। वे यह देखने में समर्थ हो जाते हैं कि एक ही ब्रह्म माया के द्वारा अनेक रूपों को धारण करके जगदाकृति मे विराजित है।

"रूपं रूपं मधवावोभवीति मायाः .... परिस्वाम्"—(ऋग्वेदसंहिता)
ब्रह्म ही एकमात्र सत् है। एकमात्र तत्व है। इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि (पार्थिवाग्नि), दिव्याग्नि (सौर वैद्युतादि) एक ही परमात्मा के भिन्न-भिन्न रूप हैं। अथर्ववेद का कथन है : -"यदेजति पतति यच्च तिष्ठति प्राणदप्राणन्निमिषच्चयद्भुवत्। तद्दाधार पृथिवीं विश्वरूपं तत् संभूय भवत्येकमेव ॥"

अर्थात् जो कम्पित होता है, जो गतिशील है, जो पवित्र होता है, अवस्थान करता है, जो स्थितिशील है, जो सप्राण है, जो अप्राण है, जो स्पन्दनशील है, अर्थात् जो कुछ विद्यमान है, वह सव एक ब्रह्म के मायापरिच्छिन्न रूप के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। एक अद्वितीय ब्रह्म अपने शक्ति व्यापाराश्रय के कारण अनेकधा भिन्न होकर जगदाकृति धारण करता है तथा समष्टिभाव में वह एक अनन्त सच्चिदानन्द रूप में रह जाता है। विदेशी विद्वान "One principle" अवश्य कहते हैं, किन्तु वे श्रुतिर्निर्दिष्ट सच्चिदानन्दमय परमपुरुष का लक्ष्य कर सकने में असमर्थ हैं।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रत्येक शास्त्र कार्यकारण सम्बन्ध निर्णायक होता है। यह विश्व की सृष्टि, स्थिति तथा लय का प्रतिपादक है। जो परिदृष्ट हो रहा है, जो इन्द्रिय द्वारों में प्रतिफलित हो रहा है, वह क्या है, किस प्रकार का है, किस नियम अथवा निमित्त से उत्पन्न, स्थित तथा विलीन होता है, जो परिदृष्ट नहीं होता—जो स्थूल इन्द्रियों का विषय नहीं है, उसका स्वरूप क्या है? यह सब शास्त्रों का आलोचित विषय है। यद्यपि समस्त शास्त्र कार्यकारण सम्बन्ध के निर्णायक हैं किन्तु कार्यमात्र के परम-कारण का निर्देश कर सकना समस्त शास्त्रों का उद्देश्य नहीं है। चिन्तनशील

तत्व शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ क्या है?—"तनु विस्तारे" विस्तरार्थक इस "तन्" धातू के उत्तर में क्विप् प्रत्यय लगाने से "तत्" पद सिद्ध हो जाता है। तत् का भाव—तत्व।

"तत्वं परात्मनि। वाद्यभेदे स्वरूपे च"

अर्थात् तत्व शब्द के द्वारा परमात्मा, वाद्यभेद एवं स्वरूप, यह सब अर्थ व्यवहृत होता है। इदं पदवाच्य विश्वब्रह्माण्ड स्वरूपतः ब्रह्म हैं। वे ही हैं तत् अथवा ब्रह्म का भाव है तत्व। तद् अथवा तत् सर्वनाम है। सर्वनाम किसे कहते हैं? "सर्व्वं च ब्रह्म तस्य नाम सर्वनाम"। सर्व शब्द ब्रह्मवाची है। सर्व का ब्रह्म का नाम सर्वनाम। "सर्व्वं खल्विदं ब्रह्म"—(छान्दोग्योपनिषद्) अर्थात् प्रत्यक्षादि प्रमाण, प्रमेय प्रकृति स्वरूपतः ब्रह्म है। ब्रह्म के अतिरिक्त द्वितीय वस्तु का सर्वथाभाव है। स्वरूप शब्द का अर्थ है निजरूप, स्वभाव, अविकृतावस्था। जब सभी कुछ ब्रह्म है, तब ब्रह्म ही सबका स्वरूप है। स्वभाव अविकृतावस्था है। अतः किसी पदार्थ का स्वरूपचिन्तन तथा ब्रह्म का स्वरूप-चिन्तन एक ही बात है। जिस किसी भी वस्तु का चिन्तन किया जाये, उसकी स्वरूपावस्था ब्रह्म ही है। इस सम्बन्ध में और भी कुछ कहना है। यद्यपि वस्तुमात्र की स्वरूपावस्था ब्रह्म ही है, तथापि यह सभी नहीं समझ सकते! किसी एक कार्य की कारणानुसंधित्सा में प्रवृत्त होने पर अपनी-अपनी शक्ति अथवा प्रयोजन के अनुसार अनेक व्यक्ति द्वितीय, तृतीय किंवा चतुर्थादि क्रम की सूक्ष्मावस्था अथवा पर्वों में से किसी एक अवस्था अथवा पर्व को परीक्ष्य-मान वस्तु अथवा कार्य का परमकारण मानकर संतुष्ट हो जाते हैं। अतः इसी कारण स्वरूप शब्द का प्रकृत अर्थ संसार में प्रकट नहीं है। केवल स्वरूप शब्द का प्रकृत अर्थ ही नहीं, प्रत्युत किसी भी शब्द का स्वरूप अथवा प्रकृतरूप सांसारिक बुद्धि में प्रतिभात नहीं हो सकता। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्वजिज्ञासा जड़विज्ञान द्वारा विनिवृत्त नहीं हो सकती।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पाश्चात्य विद्वान हर्बर्ट स्पेन्सर फिलासफी का लक्षण एवं लक्ष्य निर्धारण करते समय कहते हैं कि परसामान्य अथवा परिजाति ज्ञान (Knowledge of the generality) फिलासफी का लक्ष्य पदार्थ है। जगत् अव्यक्तावस्था से व्यक्तावस्था में आगमन करता है और व्यक्तावस्था से अव्यक्तावस्था में गमन करता है। इसकी पद्धति का निर्धारण दर्शनशास्त्र का कार्य है।[1] विज्ञान का लक्षण तथा प्रतिपाद्य विषय क्या है ? विदेशी विद्वानों से यह जिज्ञासा करने से ज्ञात हो सका है कि अंशतः अपर सामान्य अथवा अपरजाति ज्ञान, समन्वित ज्ञान, भिन्न-भिन्न भाव से उपलभ्यमान पदार्थों की जाति का निर्वाचन, वैषम्य में साम्यभाव का आविष्करण (Generalisation) विज्ञान का प्रतिपाद्य विषय है। अतः यह कहा जा सकता है कि विज्ञान दर्शन का (Philosophy) संकीर्ण रूप है। विद्वान Bain वर्तमान समय के लिए (For the purpose of the present day) विज्ञान को प्रधानतः सप्तभागों में विभक्त करते हैं—यथा तर्कशास्त्र—न्याय (Logic), गणित (Methamatics), मेकैनिकल फिजिक्स (Mechanical Physics यंत्र विज्ञान), मौलिक्यूलर फिजिक्स (Molecular Physic भूत विद्या भौतिक विज्ञान) वेद अथवा रसायन शास्त्र (Chemistry) जीवनतत्व (प्राणविद्या Biology) साईकोलाजी (Psychology मनस्तत्व)।[2] श्रुति ने विद्या को परा तथा अपरा भेद से भागद्वय में प्रविभक्त किया है। उक्त है

(1) "May it not be inferred that philosophy has to formulate this passage from the imperceptible into the perceptible, and again from the perceptible into the imperceptible"

—(First Principles, P. २८०)

(2) "श्रुति ने षडंग वेद को अपराविद्या कहा है। भगवान श्रीकृष्ण भी कहते हैं। "त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन" — (गीता) अर्थात् हे अर्जुन। वेद समूह त्रैगुण्य विषयक (जो सत्व, रजः, तमः रूप गुणत्रय से सम्बद्ध हैं। त्रैगुण्य है त्रिगुणमय संसार अथवा पुण्यकर्म, पापकर्म एवं मिश्रकर्म) हैं। तुम निस्त्रैगुण्य (निष्काम) हो जाओ। इसके अभाव में मुक्ति नहीं मिलती। अतः यदि तुमको मुमुक्षत्व हो, तब तुम्हे निष्काम होना आवश्यक है। त्रिगुणातीत परमेश्वर की उपासना करना ही होगा।" इस वाक्य को पढ़कर तथा श्रुति द्वारा वेद को अपराविद्या कहे जाने की उक्ति को जानकर वर्त्तमान काल में अनेक स्वयसिद्ध स्वदेशी-विदेशी शास्त्र व्याख्याता वेद के प्रति तीव्र कटाक्ष कर सकते हैं। वे शास्त्रविरुद्ध अद्भुत सिद्धान्तों की अवतारणा भी कर सकते हैं।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"निष्काम" तथा 'ब्रह्मज्ञान' इत्यादि शब्दों का अर्थ आजकल जितना सुगम हो कर विवेचित हो रहा हैं, प्राचीन काल में इतनी सुगमता से विवेचित नहीं होता था। आंग्लभाषा में यह अपूर्व शक्ति है कि इसको जानने वाले के लिये कुछ भी दुर्वोध्य नहीं रह जाता। वे शास्त्र तथा धर्म से सम्बन्धित दुरवगाह विषय भी तत्काल मीमांसित कर देते हैं। आंग्लभाषा की शिक्षा प्राप्त कर लेने से आचार्यगण के मतखण्डन की क्षमता प्रादुर्भूत हो जाती है, स्वाधीन चिन्तनशीलता का विकास होने लगता है। जो कुछ भी हो, जो ऋषियों तथा आचार्यों की बातों को शिरोधार्य करते हैं, उनसे मैं यह कहता हूँ कि श्रुति ने जिस उद्देश्य से षड्दर्शन को अपराविद्या कहा है, भगवान कृष्ण ने जिस उद्देश्य को लेकर वेदों को "त्रैगुण्य विषय" कहा है, वर्त्तमान समय के शास्त्र व्याख्याता उसे लक्ष्य नहीं करते, वे समझ ही नही पाते। भगवान शंकराचार्य ने इस सम्बन्ध में जो कुछ कहा है, उसे अंकित करना है। आचार्य कहते हैं कि पराविद्या उपनिषद्वेद्य है। अक्षर विषयक विज्ञान हैं। परब्रह्म विषयक ज्ञान प्रधानतः विवक्षित होता है। उपनिषद्वेद्य अक्षर विज्ञान वैखरी वाक् द्वारा अधिगम्य नहीं है। वह शब्दराशि के माध्यम से ज्ञेय नहीं है। ब्रह्मज्ञान को शब्दराशि द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता। बहुशब्दज्ञ भी गुरुकृपा के विना, वैराग्यानल द्वारा हृदयस्थ कामनाग्रंथि को भस्मीभूत किये बिना, निष्काम अथवा विगतस्पृह हुये विना ब्रह्मविद्या का प्रकाश नहीं प्राप्त कर सकता। "वेद" शब्द से साधारणतः शब्दराशि का तात्पर्य भासित होता है। इसी कारण श्रुति ने वेद अथवा वेद्य विषय विज्ञान से उपनिषद्वेद्य अक्षर विषयक विज्ञान को पृथक् रक्खा है। "उपनिषत्" ऋगादि वेदवाह्य ज्ञान नहीं है। जैसे तिल में तैल है उसी प्रकार वेद में वेदान्त अथवा उपनिषद् सुप्रतिष्ठित है।

"तिलेषु तैलवत् वेदे वेदान्तः सुप्रतिष्ठितः" (मुक्तिकोपनिषत्)

छान्दोग्य में नारद-सनत्कुमार संवाद मनोयोग-पूर्वक देखना चाहिये। वेद शब्द का अनेक अर्थों में प्रयोग होता है। भगवान श्रीकृष्ण उक्त स्थल में सकाम कर्मकाण्ड के लिये इसका व्यवहार कर रहे हैं।

"यदक्षरं वेदविदो वदन्ति"—(गीता) यहाँ वेद का तात्पर्य उपनिषत् से है। "उपनिषद्वेद्याक्षरविषयं हि विज्ञानमिह परा विद्येति प्रधान्येन विवक्षितं नोपनिषच्छब्दराशिः वेदशब्देन तु सर्वत्र शब्दराशिर्विवक्षित शब्दराश्यधिगमेऽपि यत्रान्तरमन्तरेणगुर्व्वभिगमनादिलक्षणं वैराग्यं च नाक्षराधिगमः संभवतीति पृथक्करणं ब्रह्मविद्यायाः परा विद्येति कथनंचेति" —(मुण्डकोपनिषद् भाष्य)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"द्वे विद्ये वेदितव्ये इतिऽस्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च"
(मुण्डकोपनिषद्)

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त ज्योतिष आदि अपरा, विद्या है। जिस विद्या के द्वारा अक्षर परब्रह्म का ज्ञान होता है, अक्षर परब्रह्म की प्राप्ति होती है, वह परा विद्या है। किंचित् चिन्तना से यह उपलब्धि हो जाती है कि विद्या को परा एवं अपरा भाग में विभक्त करना पूर्णतः युक्तिसंगत है। ब्रह्म की भी पर एवं अपर रूप से द्विविध अवस्था होती है। श्रुति के अनुसार अतीत, अनागत तथा वर्त्तमान रूप कालशक्ति निखिल जगत पुरुष की, परब्रह्म परमकारण की महिमा है, स्वीय शक्ति है। त्रिकालमय जगत के रूप में ही क्या ब्रह्म के व्यापक रूप का संधान मिल सकता है? क्या वे अनित्य जगत् रूप हैं? नहीं, जगत उनका वास्तविक रूप नहीं है। परम ब्रह्म परमात्मा इस जगत् रूप महिमा अथवा शक्ति से अतिशय वृहद् (ज्यायान) हैं। विश्वभूत कालत्रय तथा प्राणिजगत् परम पुरुष का चतुर्थांश मात्र है। इनका शेष पादत्रय अमृत् है। विनाशरहित, सनातन है। द्योतनात्मक प्रकाश स्वरूप में व्यवस्थित है। परमपुरुष परमात्मा का यह एक पाद मायाद्वारा पुनः-पुनः अव्यक्तावस्था से व्यक्तावस्था में तथा व्यक्तावस्था से पुनः अव्यक्तावस्था में गमनागमन करता रहता है। सृष्टिकाल में परमेश्वर माया द्वारा देव, तिर्यक आदि विविध रूप में व्याप्त हो जाते हैं। साशन (भोजनादि व्यवहारोपेत चेतनप्राणी जगत) तथा अनशन (भोजनादि रहित गिरि, नदी सागर प्रभृति) रूप से परब्रह्म ही उभयरूपों में विविध होकर विश्व ब्रह्माण्ड की सृष्टि करते हैं। अतः विद्या को

वेद त्रिगुणमय संसार का उपदेष्टा है। वेद त्रैगुण्य विषयक है। पुनः वही वेद ही त्रिगुणातीत ब्रह्म का स्वरूप प्रदर्शक भी है। वही निःस्त्रैगुण्य है। भगवान श्रीकृष्ण का उपदेश पढ़ने से यह प्रमाणित हो जाता है कि उन्होंने वेद शब्द का किस अर्थ में प्रयोग किया है। "वेदे काण्डत्रयं प्रोक्तं कर्मोपासनबोधनम्। साधनं काण्डयुग्मोक्तं तृतीये साध्यमीरितम्॥" (यन्त्रमहोदधि)

अर्थात् कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड तथा ज्ञानकाण्ड का वेदों में उपदेश है। कर्मकाण्ड तथा उपासनाकाण्ड भी साधन (Means) है, ज्ञानकाण्ड साध्य (End) है। कर्म तथा उपासना द्वारा शुद्धचित्त हो जाने पर ही मुक्तिप्रद ज्ञान विकसित होता है। चित्तशुद्धि की शक्ति के अभाव में उपासना का अधिकार नहीं होता, अतः वेद को त्रैगुण्य विषयक कहकर प्रत्याख्यान किया गया है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भागद्वय में विभक्त करना युक्तिपूर्ण है। जो भाव सृष्टि स्थिति लयात्मक है, जो भाव अतीत, अनागत, वर्त्तमान प्रभृति अवस्थात्रय विशिष्ट है, वह कार्यात्मभाव है। यही है अपरब्रह्म। जिस विद्या के माध्यम से कार्यात्मभाव का तत्व निर्धारित होता है, अपरब्रह्म का स्वरूपावधान होता है, वह अपरा विद्या है। जिस विद्या से परब्रह्म का स्वरूप निर्णीत होता है, उसे परा विद्या कहते हैं।

"यस्य यद्व्यापकं तस्य तद्ब्रह्मातो धरादिकम्" (सांख्यसार)

ब्रह्म शब्द की व्युत्पत्ति से विदित होता है कि जो बृहद्, व्यापक है, वह ब्रह्म है। विज्ञानभिक्षु उक्त वचन के द्वारा यह समझाते हैं कि जो जिसका व्यापक है, वह उसका ब्रह्म है। कारण ही कार्य का व्यापक रूप है। कार्य, कारण गर्भ में निवास करता है। अतः कार्य का ब्रह्म है कारण। अखण्डैकरस चिन्मय परमपुरुष से बृहद् अथवा व्यापक पदार्थ की सत्ता ही नहीं है। अतः वे परब्रह्म हैं। निखिल कार्य के परम कारण हैं। किसी भी कार्य की तत्वजिज्ञासा को विनिवृत्त करने के लिये परमकारण का साक्षात्कार आवश्यक है। जड़ विज्ञान तो इसमें समर्थ नहीं है। यहाँ तक कि प्राणविद्या भी कार्यमात्र की तत्व जिज्ञासा को विनिवृत्त कर सकने में अक्षम है। एकमात्र उपनिषद्वेद्य, अक्षरविषयविज्ञान अथवा पराविद्या के द्वारा तत्व-जिज्ञासा विनिवृत्त हो सकती है। श्रुति निर्वाचित अपरा विद्या की अधःस्तन (निचली) सोपान पंक्ति के तुल्य है पाश्चात्य विज्ञान। ऐतरेय आरण्यक के अनुसार उत्तम, मध्यम तथा अधम रूप से त्रिविध विद्या के अधिकारियों का निर्वाचन किया गया है। जो सर्व प्रकार से संसार विरक्त हैं, स्थावर से ब्रह्मपद पर्यन्त की स्थिति जिनके लिये तृण के समान है, जो प्रकृत वैराग्यवान्, एकाग्र, सद्योमुक्तिकाम हैं, वे उत्तम विद्या के अधिकारी हैं। श्रुति ने इनके लिये उपदेश दिया है कि "आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्" अर्थात् आत्मा ही एकमात्र पदार्थ है। तद्भिन्न पदार्थ की कोई सत्ता ही नहीं है। जो हिरण्यगर्भ प्राप्ति के द्वारा क्रमशः मुक्तिकाम हैं, वे मध्यमविद्याधिकारी कहे जाते हैं। श्रुति ने इनके हितार्थ प्राणविद्या (पाश्चात्य विज्ञान की Biology से भिन्न यथार्थ विद्या) का उपदेश दिया है। जिन्हे सद्योमुक्ति एवं क्रम-मुक्ति अभीसिप्त नहीं है, जो जागतिक भोगैश्वर्य साधन, प्रजापशु आदि की कामना करते हैं, जिनका लक्ष्य जागतिक उन्नति ही है, वे हैं अधमविद्या के अधिकारी। इनके लिये श्रुति ने संहिता उपासना का विधान किया है।[1]

---

१. "त्रिविधो विद्याधिकारी, उत्तमो मध्यमोऽधमश्च। सर्वस्मात् संसारद्विरक्त एकाग्रचित्तः सद्योमुक्तिकाम उत्तमः। तं प्रत्यात्मा वा इदमेक एवाग्र असीदित्यादिना ब्रह्मविद्योक्ता। हिरण्यगर्भप्राप्तिद्वारा क्रममुक्तिकामो मध्यमः। ······ तं प्रति संहितोपासनं तृतीयारण्यकेऽभिधीयते"—(ऐतरेय आरण्यक भाष्य)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जीवजाति (Animal Kingdom) उद्भिद (Vegitable Kingdom) खनिजजाति (Mineral Kingdom) के कार्यात्मभाव का तत्वानुसंधान पाश्चात्य विज्ञान का उद्देश्य है।[1] स्थूलेन्द्रिय समूह इन तीनों के अतिरिक्त कुछ भी अनुभव कर सकने में समर्थ नहीं है। अतः इन्द्रियों के ज्ञान से प्रसूत जड़विज्ञान इसके अतिरिक्त किसी भी पदार्थान्तर के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता। यदि स्वीकार करता भी है, उस स्थिति में उसे अज्ञेय मानकर उसके तत्वानुनन्धान में प्रवृत्त नहीं होता। जो मुक्ति के प्रार्थी नहीं हैं, जिनके लिये यह जगत् ही जीवन का सब कुछ है, केन्द्र है, जो सूक्ष्मपदार्थ के तत्वानुसन्धान में प्रवृत्त नहीं होते, जो मुक्तिकामी नहीं हैं उनकी प्रवृत्ति सूक्ष्म अनुसंधान की ओर अग्रसर नहीं होती। विद्वान् हर्बर्ट स्पेन्सर ने अनिर्देश्य, अज्ञेय (The unknowable) तथा ज्ञेय, निर्देश्य (The Knowable) रूप से प्रतिपाद्य विषय का वर्णन किया है। रिलिजन एवं विज्ञान (Religion and Science) रिलिजन जनित चरम उपलब्धि (ultimate Religious ideas) विज्ञान की चरम उपलब्धि (Ultimate Scientific Ideas) सर्वप्रकार की उपलब्धि का अनन्योपेक्षत्व (The relativity of Knowledge), समाधान अथवा सम्मेलन (The reconcillation), ये सभी अज्ञेय (The unknowable) हैं। विद्वान स्पेन्सर ने जिन विषयों का ज्ञेय (Knowable) कहा है, चिन्तना करने से ज्ञात है कि वे भूत एवं भौतिक पदार्थ के जड़ विज्ञान निर्देश्य भिन्न-भिन्न परिच्छिन्न रूप हैं। शास्त्र ने भी ज्ञेय-अज्ञेय, निर्देश्य–अनिर्देश्य रूप से पदार्थ समूह को भागद्वय में विभक्त किया। शास्त्र का कथन है कि जो स्थूल-सूक्ष्म इन्द्रिय गोचर है. व्याकृत वस्तु है, वही ज्ञेय है। जो सर्वकार्य धर्मातीत है, जिसे किसी विशेषण द्वारा विशेषित नहीं किया जा सकता, जो परम कारण, ज्ञाता, ज्ञानस्वरूप है, वही अज्ञेय है।[2] ऐसी स्थिति में जिज्ञासा है कि श्रुति ने "आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः' इत्यादि उपदेश क्यों दिया है? अर्थात् आत्मा को ही जानना चाहिये, ऐसा क्यों कहा गया?

---

1. "All substances so for as we have an opportunity of examining them, belong to one or other of the three kingdoms of nature distinguished by the names of tne mineral, vegetable and animal kingdoms"

(Chemistry of Organic Bodies, Vegetables, By T. Thomsons)

(२) "स एव नेति नेतात्माऽगृह्यो न हि गृह्यते न हि शीर्यतेऽसंगों, न हि सज्जते असितो न व्यथते न विष्यति" —(बृहदारण्यक)

भगवान शंकराचार्य इसका भाष्य करते समय कहते हैं—"यदि कारणगोचरं व्याकृतं वस्तु तद्ग्रहण गोचरमिदन्तु तद्विपरीतमात्मतत्वम्"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शब्द "जानना" से हम जो कुछ समझते हैं, उस प्रकार से आत्मा को नहीं जाना जा सकता। "विज्ञातारमेव केन विजानीयात्" (वृहदारण्यक)। जो स्वयं विज्ञाता है, उसे कैसे जाना जायेगा ? जो चैतन्य स्वरूप है, जो सर्वावभासक है, जिसके प्रकाश से निखिल पदार्थ प्रकाशित होते हैं, वह अन्य के द्वारा प्रकाश्य कैसे हो सकता है ? किसी विषय बुद्धि के द्वारा खण्डित तथा परिच्छिन्न करने का नाम है "जानना"। आत्मा अखण्ड सच्चिदानन्दमय है। अतः वह परिच्छिन्न बुद्धि का विषयीभूत अथवा खण्डित नहीं हो सकता। जो बुद्धि का विषयीभूत है, वह आत्मा नहीं है। वह आत्मा का माया द्वारा परिच्छिन्न भावमात्र है। तब आत्मदर्शन कैसे संभव है ?

"यदा पंचावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्ठते तामाहु परमांगतिम्॥
यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः।
अथ...... ....।" (कठोपनिषद्)

अर्थात् जब पंचज्ञानेन्द्रियां बाह्यविषय से प्रत्याहृत तथा विनिवृत्त होकर मन के साथ अवस्थान करती हैं, जब अध्यवसाय लक्षणा बुद्धि भी स्वव्यापार शून्य हो जाती है, तब उस अवस्था को परमागति कहते हैं। जिस समय हृदयाश्रित समस्त कामनायें प्रतीत होकर आत्मारूप एकमात्र कमनीय पदार्थरूप से प्रत्यक्षीभूत होने लगती हैं, और जब यह प्रतीत होता है कि वही ईप्सितम है, और जब ज्ञान सूर्य के प्रखर प्रकाश से ऐहिक-पारत्रिक समस्त विषयों का निर्मूलीकरण हो जाता है, तब मरणधर्मी मानव अमरत्व से आप्लावित होने लगता है। यही है स्वरूप प्रतिष्ठा। यही आत्मदर्शन भी है।

'न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्च नैनन्।
हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति॥ (कठोपनिषद्)

सर्वव्यापी परमात्मा सर्वत्र अगोचर रूप से विद्यमान हैं। प्रत्यगात्मा का रूप दर्शन का विषय नहीं है। चक्षुरादि इन्द्रियों द्वारा कोई भी प्रकृत आत्मा का साक्षात्कार नहीं कर सकता। आत्मा स्वप्रकाश स्वरूप है। चित्तवृत्ति समूलतः निरुद्ध होने पर जब कामना मेघ वैराग्य प्रभंजन के द्वारा हठात् विद्रावित होता है, तब विमल हृदय गगन में आत्मसूर्य स्वयं प्रकाशित हो जाता है।

"तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ॥—(कठोपनिषद्)

अर्थात् बाह्य एवं अन्तःकरण रूप कारणद्वय अथवा इन्द्रियों की अचल धारणा का नाम है योग। योग के बिना आत्मदर्शन नहीं होता। योग के अभाव में

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

परमकारण का प्रकाश प्राप्त नहीं होता। योग की सहायता से ही तत्वजिज्ञासा विनिवृत्त हो सकती है।

"स यो ऽवै तत् परमंब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति"—(मुण्डकोपनिषद्)

किसी पदार्थ को जानने के लिये तन्मय होना पड़ता है। उस भाव में भावित होना होता है। (To know In reality means to be)[1] । अत: जिन्होंने अमृतत्व का लाभ किया है, जो अखण्ड सच्चिदानन्द को प्राप्त हैं, सर्व उपाधि विनिर्मुक्त होकर ब्रह्मरूप हो गये हैं, वे ही ब्रह्मविद् हैं। वे ही प्रकृततत्वदर्शी हैं। आत्मा का स्वरूपावस्थान ही आत्मदर्शन है। (तदा द्रष्टुः स्वरूपेवस्थ्यानम्)—(पातंजलदर्शन)।

"योग के अभाव में आत्मदर्शन नहीं होता"। "योग के बिना तत्वज्ञान नहीं मिलता"। "योग ही तत्वज्ञानार्जन का एकमात्र साधन है"। योगतत्व ज्ञान के अभाव में विषयासक्त पाश्चात्य व्यक्ति तथा पाश्चात्यभावापन्न भारतवर्षी लोग इन सब उक्तियों को युक्तिसंगत नहीं मानते। धारणा, ध्यान; समाधि (Contemplation) के द्वारा वस्तुतत्व ज्ञात होता है, सूक्ष्म पदार्थों के तत्वज्ञान की प्राप्ति होती है—क्या साधारण लोग इसपर विश्वास कर सकते हैं? किस उपाय से वस्तुतत्व परिज्ञात होता है? विज्ञान किस प्रकार से वस्तुतत्व का ज्ञान प्राप्त करता है?

---

(1) पाश्चात्य विद्वान हेनरी कहते हैं "Uninterrupted correspondence with a perfect environment is eternal life according to science... life eternal is to know God To know God is to correspond with God. To correspond with God is to correspond with perfect environment. And the organism which attains to this in the nature of things must live for ever. Here is eternal existence and eternal knowledge" (Natural Law in the Spiritual World, P 212, By Henry Drumond)

"तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय"—(श्वेताश्वतरोपनिषद)

"अविष्णुः पूजयेद्विष्णुं न पूजाफलभाग्भवेत्।
विष्णुर्भूत्वार्च्चयेद्विष्णुः महाविष्णुरिति स्मृतः॥"—(योगवाशिष्ठ)

अर्थात् भगवान की उपासना के लिये भगवद्भाव से स्वयं को भावित करना ही होगा। विना विष्णु हुये, विश्वजनीन प्रेम के द्वारा सर्वभूतात्मदृष्टि के अभाव में विष्णुपूजा सार्थक नहीं हो सकती। विष्णु होकर पूजा करने से उपासक क्रमशः महाविष्णुरूप में परिणत हो जाता है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विद्वान टेट कहते हैं कि प्राकृतिक परिणाम से सभी कार्यकारण का सम्बन्ध निर्णीत होता है। निर्णीत कार्यकारण सम्बन्ध को गणित द्वारा प्रमाणित करना (अर्थात् कौन सा कार्य किस उपादान कारण समवाय से समुत्पन्न होता है, उसका मात्रिक सम्बन्ध क्या है) विज्ञान का कार्य है। शास्त्रोपदेश है कि पदार्थ समूह का कार्य (विकार) उपादान एवं निमित्त कारण से समुत्पन्न होता है। अतः किसी एक कार्य का तत्वज्ञान प्राप्त करने के लिये उसके उपादन तथा निमित्त रूप कारणद्वय का तत्वज्ञान प्राप्त करना ही होगा। कार्य का कारणानुसंधान करना तत्वजिज्ञासु का एकमात्र कर्त्तव्य है। जिस मूल कारण से सभी कार्य प्रस्तुत होते हैं, उसे शास्त्रों ने 'ब्रह्म', 'आत्मा' इत्यादि शब्दों से अभिहित किया है। यह ब्रह्म तथा आत्मा ही द्रष्टव्य है। इनका दर्शन होते ही दर्शन पिपासा (दिदृक्षा) उपशमित हो जाती है। ज्ञानपिपासा (जिज्ञासा) भी पूर्णतः विनिवृत्त होने लगती है। जिसके द्वारा आत्म-दर्शन कार्य निष्पन्न होता है, उसी का नाम है दर्शन।

कार्य का कारणानुसंधान कैसे करना है ? "आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनि खल्वरे दृष्टे श्रुते मते विज्ञाते इदं सर्व्वं विदितम्"—(वृहदारण्यक) : अर्थात् आत्मा ही द्रष्टव्य है, वही सर्व प्रकार की दिदृक्षा का केन्द्रस्थान है। आत्मदर्शन कैसे होता है ? आत्मदर्शनार्थी का कर्त्तव्य क्या है ? किस उपाय का अवलम्बन करने से आत्म दिदृक्षा चरितार्थ होती है ?

उत्तर—आचार्य अथवा शास्त्रों से पहले आत्मोपदेश सुनना चाहिये। तदनन्तर मनन, तर्क द्वारा श्रुतविषय का चिन्तन, तत्वावधारण एवं तदनन्तर निदिध्यासन, ध्यान, यही आत्मदर्शन के साधन हैं। श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन को ग्रहण करना एकमात्र कर्त्तव्य है। आचार्य तथा आगम से सुने गये विषय को मनन एवं ध्यान द्वारा यथायथ रूप से उपलब्ध करने से जब उक्त क्रियात्रय (श्रवण-मनन-निदिध्यासन) का फल एकरूप होता है, तब एकत्वविषय स्वरूप ब्रह्मदर्शन सिद्ध हो जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य साधन नहीं हैं।[1]

ज्ञानोत्पत्ति सम्बन्धित पाश्चात्य मत—पाश्चात्य विद्वान कहते हैं कि दर्शन (Observaton) तथा परीक्षा (Experiment) के द्वारा तत्वज्ञान प्राप्त होता है। कार्य का कारणानुसन्धान करने की यही पद्धति है। उपदेश का तात्पर्य ग्रहण करने के लिये दर्शन एवं परीक्षा (Observation and Experiment) आवश्यक हैं। अतः यह देखना है कि इन दोनों में अर्थात् दर्शन एवं परीक्षा में, पारस्परिक पार्थक्य कैसा है ?

---

१. "श्रवणमनननिदिध्यासनसाधनैर्निर्वर्त्तितैः येदकत्वमतोन्युपगतानि तदा सम्यग्दर्शनं ब्रह्मैकत्वविषयं प्रसीदति नान्यथा" (शांकरभाष्य)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विद्वान जेवन्स कहते हैं कि हमारे चतु:पार्श्व में नैसर्गिक नियम द्वारा जो घटनायें संघटित होती हैं, जब हम उनका मनोयोग पूर्वक ईक्षण तथा स्मरण करते हैं, तब हमारी वह चेष्टा दर्शन कहलाती है। जब हम अपनी पेशियों की सहायता से व्यवधान देकर प्राकृतिक प्रवर्त्तन को परिवर्त्तित करते हैं, उस प्रकार के कृत्रिम संघात के द्वारा अपूर्व घटना का संघटन करने में समर्थ हो जाते हैं, तब हमारे उस कार्य को परीक्षा कहा जाता है।[1]

वैज्ञानिक पण्डित हर्शल कहते हैं कि दर्शन तथा परीक्षा सर्वथा पृथक् वस्तु नहीं है। दोनो ही इन्द्रियों के कार्य हैं। दोनो कार्य इन्द्रियों के द्वारा सम्पादित होते हैं। तब दोनों में पार्थक्य क्या है? शुद्धदर्शन निःश्चेष्ट, निष्क्रिय, अप्रवर्त्तक (Passive observation) है। शुद्धदर्शन में आलोचित वस्तु के विशेष-विशेष धर्म सम्यक् रूप से कल्पित नहीं होते। परीक्षा (Active observation) द्वारा आलोचित वस्तु के विशेष-विशेष धर्म विवेचित हो जाते हैं। दर्शन + भाव, अवस्था अथवा धर्मपरिवर्त्तन परीक्षा (Experiment)[2]। विद्वान मिल कहते हैं कि—अधिकदेशवृत्ति अवस्था अथवा अत्यन्त विस्तृत दर्शन ही परीक्षा है।[3] पूज्यपाद वात्सायन मुनि ने न्यायशास्त्र

---

1. "It is usual to say that the two sources of experiences are observations and experiment When merely note and record the phenomena which occur around us in the ordinary course of nature we are said to observe. When we change the course of nature by the intervention of our muscular powers and thus produce unusual conbinations and condition of phenomenon, we are said to experiment." (Principles of Science, Jevens)
2. "We might properly call these two modes of experience passive and active observation. In both cases we must certainly employ senses to observe, and on experiment differs from a mere observation in the fact that we more or less influence the character of the events which w3 observe. Experiment is thus observation plus alteration of Conditions"
(Preliminery Discourses on the Study of Natural Philosophy, By Horshel, Page 77)
3. "The first and most obvious distinction between observation and experiment is, that the latter in on immense extension of the former',— (Mills Logic, Vol I)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

की प्रवृत्ति का निर्देश करते हुये कहा है कि पदार्थमात्र का अभिधान अथवा उद्येश्य ही उद्दिष्ट पदार्थ के अतत्वावच्छेदक धर्म अथवा लक्षण का निर्देश करता है। यह परीक्षा करता है कि लक्षित पदार्थ का लक्षण सम्यक् रूप से उपपन्न है अथवा नहीं। वह प्रत्यक्षादि प्रमाण के द्वारा उसकी अवधारणा भी करता है। यही है न्यायशास्त्र की त्रिविध प्रवृत्ति।[1]

पाश्चात्य पंण्डित ज्ञानोत्पत्ति के जिस उपाय को निर्धारित करते हैं, वास्तव में उपर्युक्त शास्त्रीय विचारों से उनका कोई भी पार्थक्य नहीं हैं। स्थूल-सूक्ष्म भेद के अतिरिक्त उसमें कोई भी प्रभेद नहीं है। पाश्चात्य विज्ञान का प्रतिपाद्य विषय है स्थूल इन्द्रिय ग्राह्य जागतिक वस्तु, जो भोगोपकरण रूप है। स्थूल इन्द्रियातीत पदार्थ का तत्व निर्णय जड़विज्ञान की सीमा से परे का विषय है। अतएव सूक्ष्म तत्वानुसन्धानार्थं जिन साधनों की उपादेयता है, उसकी ओर पाश्चात्य विज्ञान का भ्रूनिःक्षेप नहीं है। पाश्चात्य विज्ञान भी वास्तव में जड़ योगसाधन से प्रसृत है। इसकी भित्ति में चित्त-संयम, एवं जड़ का ध्यान, धारणा तथा जड़ की समाधि का उपयोग हुआ है।

चिन्तित विषय का प्रति चिन्तन

किसी रेखा अथवा प्रशस्त ग्राममध्यमार्ग (ग्राम वीथिका) में जब हम भ्रमण करते हैं, तब अनेक वस्तु, नाना व्यक्तिगण हमें दृष्टिगोचर होते हैं। जब हम पण्य-वीथिका में पहुँचते हैं तब कितनी महोज्ञ-अमनोज्ञ सामग्री हमें आकर्षित करने लगती है। प्रकृति देवी अपने क्षणभंगुर, चंचल जीवन का परिचय देकर हमें सावधान करने के उद्देश्य से अथवा मोहित करने के लिए प्रतिक्षण नवीन सज्जा से सज्जीभूत होती रहती है, तथापि नयनपथ पतित समस्त वस्तु समूह अथवा व्यक्ति को हम मनोयोग पूर्वक नहीं देखते। पण्यवीथिका की नाना सामग्री भी हमें समानभाव से आकृष्ट करने में असमर्थ रहती है। प्रकृति की समस्त सज्जा का हम निरीक्षण नहीं करते।

परीक्षा शब्द की व्युत्पत्ति से जिस अर्थ की उपलब्धि होती है, तथा जेवन्स, हर्शल, मिल प्रभृति विद्वानों द्वारा आब्जर्वेशन, तथा एक्सपेरिमेन्ट का पार्थक्य निर्देश करने पर जो उपलब्धि होती है, वह व्युत्पत्तिगत अर्थ की तुलना में अस्पष्ट तथा परिच्छिन्न है।

१. "त्रिविधा चास्य शास्त्रस्य प्रवृत्तिः, उद्येशो लक्षणं परीक्षा चेति। तत्र नामधेयेन पदार्थमात्रस्याभिधानमुद्येशः तत्रोद्दिष्टस्याऽतत्त्वव्यवच्छेदको धर्मोलक्षणम्। लक्षितस्य यथा लक्षणमुपपद्यते न वेति प्रमाणैरवधारणं परीक्षा।"
—(वात्स्यायनभाष्य)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जो जिनके परिचित हैं, जिसका जिसके साथ सम्वन्ध निरूपित होता है, जो जिसे ईप्सित समझते हैं, जो जिसके लिए मनोज्ञ हैं, उसका ही वे सन्दर्शन करते हैं। उसी के आकर्षण से आकृष्ट होते हैं।

प्रयोजन के विना अथवा सम्वन्ध के विना कोई भी किसी को नहीं देखता। कोई किसी की वात पर ध्यान नहीं देता। किसी को ग्रहण करने के लिए भी उद्यत नहीं होता। अतः शास्त्र का कथन है कि कोई शास्त्र अथवा कर्म (विना प्रयोजन ! कोई भी ग्रहण नहीं करता। जब तक प्रयोजन नहीं है, तव तक शास्त्र को ग्रहण नहीं किया जाता। जव तक प्रयोजन नहीं है, तवतक कर्म नहीं किया जाता। सिद्धार्थ अथवा सिद्ध प्रयोजन सम्वन्ध को श्रवण करते ही श्रोता की उसमें प्रवृत्ति हो जाती है। प्रयोजन विशिष्ट पदार्थ ही कर्मभूमि संसार में आता है। सभी प्राणी, निखिल कर्म, समस्त विद्यासमूह प्रयोजन विशिष्ट होने के कारण संसार से सम्वन्धित हैं। सम्वन्ध ज्ञान ही सांसारिक ज्ञान है। सम्वन्धवोध के अभाव में पिता अपने पुत्र से स्नेह नहीं करता। माता पुत्र के मुख का भी संदर्शन सम्वन्धवोध के ही कारण करती है। सम्बन्धवोधाभाव में सहोदर भी सहोदर को नहीं पहचान सकता ! स्त्री भी स्वामी को सम्वन्ध वोध से ही स्वामी कहती है। सम्वन्धवोध से ही भक्त भगवान के लिए सर्वत्यागी हो जाता है। चेतन, अचेतन समस्त पदार्थ सम्वन्धवोध के कारण पारस्परिक रूप से सम्मिलित होकर प्रेरणा करते हैं। चुम्वक और लौह का पारस्परिक आकर्षण, गंधक का पारद के साथ संयुक्तीकरण भी सम्वन्धवोध से ही होता है। जगत् में वक्ता के साथ श्रोता का अथवा उपदेष्टा के साथ उपदेश्य का यथानियम वक्तृ-श्रोति अथवा उपदेष्ट्र-उपदेश्य सम्वन्ध स्थापित न होने पर वक्ता अथवा उपदेष्टा का मूल्यवान कथन भी अरण्यरोदन के समान निष्फल सिद्ध होता ! इसी कारण ग्रंथों के प्रारम्भ में प्रतीयमान ग्रंथ का प्रयोजन तथा उसका साभिधेय सम्वन्ध कहा जाता है। वक्ता ने इस प्रकार का कथन क्यों अंकित किया, यह समझे बिना तथा वक्तृ वचन का पूर्वापर सम्वन्ध स्थापित किये बिना वक्ता के वचन श्रोता के कानों में अस्फुटध्वनिवत् व्यर्थ प्रतीयमान होते हैं। धर्म तथा रिलिजन का प्रयोजनाभिधेय सम्वन्ध निर्णय करने में प्रवृत्त होकर हमने अवतक जिन सव विषयों की अवतारणा की है, उसका पारस्परिक सम्वन्ध स्थिर न कर सकने पर यह सव असम्वद्ध प्रलापवत् प्रतीत होगा। अतः हमने अव तक जिस उद्देश्य से जिन-जिन विषयों की अवतारणा की है, उन-उन अवतारित विषय समूह का पारस्परिक सम्वन्ध क्या है, इसका आभास देने के अनन्तर वक्तव्य विषयों का अनुसरण करने का प्रयत्न किया जायेगा।

धर्म तथा रिलिजन के चित्रांकन में सर्वाग्र में धर्म तथा रिलिजन का प्रयोजनाभिधेय सम्वन्ध निर्णीत करना एक आवश्यक कार्य है। इस सम्वन्ध निर्णय में प्रवृत्त

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

होने के पहले हमें यह समझना चाहिए कि प्रयोजन शब्द का क्या तात्पर्य है ? शास्त्रों से जिज्ञासा करने से यह ज्ञात होता है कि प्रयोजन का तात्पर्य क्या है ? जिस पदार्थ की अभिलाषा करने से कर्म में प्रवृत्ति का जन्म होता है, जिसके लिए प्रवृत्त होकर कर्म किया जाता हैं, वह है प्रयोजन। संसार या जगत् कर्मक्षेत्र है। यहाँ कोई भी व्यक्ति कर्म रहित होकर नहीं रह सकता। (नहि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्य-कर्मकृत्) विना प्रयोजन कोई कर्म प्रवृत्त नहीं होता। संसार के व्यक्ति अथवा वस्तु समूह सदा कर्मरत रहते हैं। अतः कहा जा सकता है कि निखिल जागतिक पदार्थ प्रयोजन विशिष्ट हैं। सभी प्रयोजन व्याप्त हैं। जिस उद्देश्य से अथवा जिससे प्रेरित होकर कोई भी कर्म में प्रवृत्त होता है, उसका प्रयोजन लक्षण विदित होने के पश्चात् यह प्रश्न स्वतः उदित होता है कि उसका स्वरूप क्या है ? इस सम्वन्ध में शास्त्र तथा युक्ति के द्वारा यह ज्ञात हो सका है कि वह है सुखप्राप्ति अथवा दुःखहानि। प्रयोजन मुख्य तथा गौण भेद से दो प्रकार का है। वेदान्त परिभाषा में कहा गया है कि सुख प्राप्ति तथा दुःख का अभाव ही इसका मुख्य प्रयोजन है। सुख साधन तथा दुःख साधन इसका गौण प्रयोजन है। न्यायसूत्रवृत्तिकार कहते हैं कि जो प्रयोजन अन्ये-च्छाधीनेच्छा विषयक नहीं है, जिस प्रयोजन का प्रयोजनानन्तर नहीं है, जो स्वमात्र विषयक ज्ञानजन्य इच्छा विषय है, वह है मुख्य प्रयोजन। जो अन्येच्छाधीनेच्छा विषय है, उसे गौण प्रयोजन कहते हैं। मुख्य एवं गौण का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ ज्ञात हो जाने से मुख्य एवं गौण प्रयोजन का स्वरूप यथार्थ रूप से आयत्त हो जाता है। मुख शब्द के उत्तर में यत् प्रत्यय करके (शाखादिभ्या यत्-पाणिनी) मुख्य पद सिद्ध हो जाता है। "मुखमिव मुख्यः" अर्थात् मुख के समान, मुखवत् = मुख्य। मुख शब्द उपाय, प्रारंभ, श्रेष्ठ, निःसरण तथा आस्य अर्थ का वाचक है। (मुखमुपाये प्रारम्भे श्रेष्ठे निःसरणास्ययोः)। "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" (पुरुषसूक्त)। श्रुति ने यहाँ पर मुख शब्द को प्रधानांग के तात्पर्य में प्रयुक्त किया है।

मुख्य प्रयोजन में मुख्यशब्द प्रधान अथवा श्रेष्ठार्थवाची है। गुणशब्द के उत्तर में अण् प्रत्यय करने से ("तत् आगतः"—पाणिनी) "गौण" पद सिद्ध हो जाता है। जो गुण से आगत है, जो गुण का परिणाम है, वह गौण है। अप्रधान है (Subordinate, Secondary, unessential)।

पाश्चात्य विद्वान स्पेन्सर ने विज्ञान (science) तथा दर्शन (Philosophy) का लक्षण विवेचित करते समय विज्ञान को अंशतः समन्वित ज्ञान (Science is partially unified knowldege) कहा है और दर्शन को सम्पूर्ण समन्वित ज्ञान (Philosophy is completely unified knowledge) की महिमा से मण्डित किया है। अर्थात् विज्ञान अपर समन्वित ज्ञान है और दर्शन समन्वित ज्ञान है। कर्त्ता यह निश्चय करता है कि "मैं यह करूँगा"। इस प्रकार मनन

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

करते हुये चिकीर्षित वस्तु की रूप कल्पना तूलिका के द्वारा मानसपट पर अंकित होने लगता है। तत्पश्चात् वह स्थूलरूप में प्रकटित होता हैं। समस्त बुद्धिपूर्वक कर्म इसी प्रकार अनुष्ठित होते हैं। किसी चित्र का अंकन करने में प्रवृत्त चित्रकार सर्वप्रथम मन में उस चित्र की कल्पना करते हैं। इसके पश्चात् उपयुक्त उपकरण के द्वारा (मानसपट में अंकित चित्र को) वाह्य चित्रपटल पर अंकित करते हैं। विद्वान स्पेन्सर ने दर्शनशास्त्र के चित्र को मानस पटल में कल्पित कर लिया है, परन्तु वह मनःकल्पित चित्र आज तक वाह्य प्रदेश में स्फुरित नहीं हो सका। एक ऐसा व्यक्ति जो चित्रांकन कला से अनभिज्ञ है, अपने मन मे कल्पना तूलिका द्वारा सुन्दर छवि को अंकित कर लेता है, परन्तु उसका अविकल प्रतिफलन वाह्यदेश में नहीं कर सकता, क्योंकि वह चित्रांकन विधा को नहीं जानता! मानसपटांकित चित्र का प्रतिफलन वाह्यदेश में करने के लिये उपयुक्त उपकरण तथा कौशल का होना आवश्यक है। विद्वान स्पेन्सर ने फिलासकी के जिस चित्र का अंकन कल्पना तूलिका के द्वारा अपने मानसपट पर अंकित किया है, वाह्य-देश में उस चित्र का अंकन करने का उपयुक्त उपकरण है वेदोपदिष्ट योगसाधन।

कार्य के परमकारण को देखने के लिये अन्तःप्रदेश में प्रविष्ट होना आवश्यक है। जो वहिर्मुख है, वह अन्तःप्रदेश का संवाद नहीं दे सकता। यहां यह भी ज्ञातव्य है कि विद्वान स्पेन्सर ने जिसे सम्पूर्ण समन्वितज्ञान कहा है, वह श्रुति के द्वारा उपदिष्ट ब्रह्मज्ञान नहीं है। दोनों में विस्तृत प्रभेद है। कल्पना के द्वारा प्रत्यक्षादि प्रमाण प्रमित ज्ञान अतिशयित, अधिकीकृत् अथवा क्षारीभूत हो जाता है। कल्पना वृंहणयंत्र (Magnifer) है। जिनके लिये इन्द्रियज्ञान ही ज्ञानार्जन का एकमात्र कारण है, इन्द्रिय जनित ज्ञान ही जिनके ज्ञान की सीमा है, कल्पना के द्वारा वे वेदों में अंकित एवं उपदिष्ट ब्रह्मज्ञान का चित्रांकन नहीं कर सकते। ब्रह्म की वृंहणयंत्र हैं। जो ब्रह्म को अज्ञेय, असत् मान कर उसका प्रत्याख्यान करते हैं, उनकी कल्पनाशक्ति नितान्त संकीर्ण है। विदेशी विद्वान् कल्पना को असार पदार्थ मानते हैं, किन्तु कल्पना वास्तव में असार नहीं है। अव्यपदेश्य कारणात्मा में अवस्थित शक्ति का नाम है कल्पना! जिनकी जैसी मानसिक शक्ति है, उनकी कल्पना भी वैसी है। वे इन्द्रियग्राह्य स्थूलरूप के अतिरिक्त किसी पदार्थ का सूक्ष्मरूप नहीं देख सकते। अतः उनकी कल्पनाशक्ति ब्रह्मोपदिष्ट संम्पूर्णज्ञान की छवि अंकित कर सकने में असमर्थ है। श्रुति का उपदेश है :—

"एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः शास्त्रान्वितः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके कामधुग्भवति"—
(श्रुति)

अर्थात् सम्यक् ज्ञात, शास्त्रान्वित एवं सुप्रयुक्त एक शब्द ऐहिक, पारत्रिक सभी कामनाओं को चारितार्थ करने के लिये पर्याप्त है। शब्द ही ब्रह्म का वाचक है। किसी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एक शब्द का अर्थ चिन्तन करते-करते अप्रतिहत गति से अंतः में प्रवेश करने पर अन्त में प्राणाराम आत्मा का दर्शन हो जाता है। क्या हम यह चिन्तन करते हैं कि इस उपदेश का मूल्य कितना अधिक है ? इस उपदेश का यथार्थ मूल्यांकन कर सकने की शक्ति हममें नहीं है। एक ही वेदमंत्र मानव की लौकिक तथा पारत्रिक समस्त कामनाओं को पूरा करने और अभावमोचन कर सकने में समर्थ है। एक ही वेदमंत्र का अर्थ सम्यक् रूप से विदित हो जाने पर ज्ञान पिपासा प्रशमित हो जाती हैं। जिज्ञासा विनिवृत्त हो जाती। मुख्य एवं गौण शब्दों का अर्थ स्पष्ट किया जा चुका है। इन शब्दद्वय का अर्थ चिन्तन करते समय जो कुछ विवेचना की गयी है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि एक ही वेदमंत्र तत्त्वजिज्ञासुओं की मींमासा करने में, सभी अभावों का उन्मोचन करने में तथा अभावयुक्त मानव को कृतकृत्य करने में समर्थ है।

पाश्चात्य विद्वान स्पेन्सर कृत् विज्ञान तथा फिलासफी का लक्षण हमारी स्मृति में उदित हुआ है, उसका कारण स्पष्ट करना आवश्यक है। संसार कर्मभूमि है। कोई भी कर्मशून्य होकर अवस्थित नहीं रह सकता। अप्रयोजन, निष्प्रयोजन कोई भी कर्म नहीं करता। जो कर्म करते हैं, वे प्रयोजन के ही कारण करते हैं। कर्म का स्वरूप चिन्तन करने से ज्ञात होता है कि सर्वप्रथम कर्त्ता गण बुद्धि के द्वारा पदार्थ का सन्दर्शन करते हैं। संदृष्ट प्रमाण के द्वारा प्रमित अथवा बुद्धि के विषयीभूत अर्थ के प्रार्थित अथवा जिहासित होने के पश्चात् कर्त्ता के द्वारा उसके ग्रहण अथवा परित्याग का अध्यवसाय किया जाता है। इसके पश्चात् उस इच्छा के परिणाम से समीहा अथवा चेष्टा का प्रारंभ होता है। कर्मारंभ होता है। तत्पश्चात् अभीप्सित अथवा जिहासित पदार्थ के साथ संयुक्त अथवा वियुक्त होने पर फल के साथ सम्बद्ध होने से कर्म शेष हो जाता है। कर्ममात्र की उपक्रम अथवा आद्य अवस्था है। सभी कर्म सान्त अथवा निवृत्तिशील[1] होते हैं। जिसे पा जाने से कर्म समाप्त हो, प्रवृत्ति की

---

१. संसार कर्म मूर्ति है। जगत् गति अथवा परिवर्तन का रूप है। यह समझाने के विद्वान् स्पेन्सर कहते हैं—

"And now towards what do these changes tend ? Will they go on forever ? Or will there be an end to them ? Can things increase in hetrogeneity through all fature time ? Or must there be a degree which the differentiation and integration of Matter and Motion cannot pass ? Is it possible for this universal metamorphosis to proceed in the same general course indefinitely ? Or does it work towards some ultimate state, adm-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

निवृत्ति हो, कर्मशील की गति स्थिर हो, वही कर्मशील का ईप्सिततम होना चाहिये। जिसकी अभिलाषा से कर्म की प्रवृत्ति का जन्म होता है, जिसके कारण कारण कर्म प्रवृत्ति की प्रेरणा व्यक्ति में होती है, वही प्रयोजन है। अतः जो जिसका ईप्सित है, वही उसका प्रयोजन है। प्रयोजन की सिद्धि हो जाने पर, ईप्सिततम का समागम होनेपर कर्मावसान अथवा कर्म की निवृत्ति हो जाती है।

प्रयोजन सिद्धि के अनन्तर गति स्थगित है, कर्म विनिवृत्त है, क्या ऐसा व्यक्ति अथवा वस्तु किसी ने देखा है? क्या किसी कृतकृत्य व्यक्ति की छवि किसी भाग्यवान के दृष्टिपथ में अंकित हो सकी है? एक प्रयोजन सिद्ध होते न होते अन्य प्रयोजन आ उपस्थित होता है। एक कर्म करते-करते कर्मान्तर का आह्वान श्रुतिगोचर होने लगता है। अतः संसार में रहते हुये, सांसारिकभाव से कलुषित् चित्त लेकर, रागद्वेष वशवर्त्ती होकर कोई कृतकृत्य नहीं हो सकता। सांसारिक अथवा संसार, सिद्ध प्रयोजन की प्रतिमा का दर्शन नहीं पा सकते। यह पवित्र मूर्ति इस राज्य में नहीं है। प्रयोजन सिद्ध होने पर मैं कृतकृत्य हो गया, यह विश्वास उदित ही नहीं होता। जिसकी इच्छा है, मैंने उसे प्राप्त कर लिया, यह प्रत्यय भी स्थायी नहीं रहता। शान्त समुद्र के समान स्थिरता नहीं मिलती। अर्थात् प्रयोजन सिद्ध होने पर भी गति का स्थगन नहीं होता। परिणाम निरुद्ध नहीं होता शाश्वत शान्ति का उपभोग संभव ही नहीं हो सका! अतः जो प्रयोजन सिद्ध हुआ था, वह मुख्य प्रयोजन न होकर गौण प्रयोजन है। इसका नाम गौण प्रयोजन है। इसका नाम गौण प्रयोजन क्यों है? जो प्रयोजन गुण से आगत है, जो प्रयोजन त्रिगुणपरिणाममय है, वही गौण है। संसार त्रिगुणमय है, सत्व, रजः एवं तमः, इन गुणत्रय का विकार है। इन्हीं का परिणाम है। अतएव संसार गौण है। संसार अथवा जगत् जिस प्रयोजन की उत्पत्ति एवं निवृत्ति का स्थान है, जो प्रयोजन संसार की सीमा का अतिक्रमण नहीं कर कर सकता, वह गौण प्रयोजन है। मुख्य प्रयोजन क्या है? मुख्य शब्द का, इस प्रकार के प्रयोजन का सार्थकत्व क्या है?

---

mitting no further modification of like kind? The last of these alternative conclusions is that to which we are inevitably driven" (First Principles, P. 483) अर्थात् परिवर्तन की सीमा है। कोई पदार्थ अवशभाव से अनन्तकाल पर्यन्त परिणाम सागर में नहीं बहता रहता। परिणाम सागर का भी किनारा, तट है।"— मैं कहता हूँ कि जिसका अवलम्बन लेकर किनारा मिलता है, उसे स्पेन्सर नहीं कह सके। उसका सन्धान भी उन्हें नहीं है। वह उपाय है योग।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यह कहा जा चुका है कि सुख प्राप्ति तथा दुःख का अभाव ही मुख्य प्रयोजन है और सुख साधन दुःखाभावसाधन को गौण प्रयोजन कहते हैं। सुख भी सातिशय तथा निरतिशय रूप से दो प्रकार का है। जिस सुख का अतिशय है, जो परिच्छिन्न है, वह सातिशय तथा जिसका अतिशय नहीं है, जो अपरिच्छिन्न, भूमा है, वह निरतिशय है विषय संग जनित अन्तःकरण वृत्ति के तारतम्य से उत्पन्न आनन्दलेश के आविर्भाव को सातिशय सुख कहते हैं और सच्चिदानन्दमय ब्रह्म ही निरतिशय सुख है :—

"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति। यत् प्रयन्त्याभिसंविशन्ति। तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्मेति"—(तैत्तरीयोपनिषद्)

जिससे ब्रह्मादि से लेकर स्थावर पर्यन्त भूतसमूह की उत्पत्ति होती है, स्थितिकाल में ब्रह्मादि से लेकर स्थावर पर्यन्त भूतसमूह जिसमें अवस्थान करते हैं, जो समस्त भूतसमूह का प्राण है, लयकाल में ब्रह्मादि सभी जिसमें लीन हो जाते हैं, जो विश्व की सृष्टि, स्थिति तथा लय का कारण है, वही ब्रह्म है।[1] अखण्ड सच्चिदानन्दमय ब्रह्म ही जीव का ईप्सित है। उसे पाने के लिये जीव जगत चन्चल है। उसे पाने से कर्म की समाप्ति हो जाती है। परिणाम अवरुद्ध होने लगता है। प्रवृत्ति की निवृत्ति हो जाती है। जीव में कृतकृत्यता का संचार होता है। अतः वही है मुख्य प्रयोजन! मुख शब्द का अर्थ है उपाय, प्रारंभ, श्रेष्ठ, निःसरण (जिसके द्वारा अथवा जिससे कुछ निःसृत हो)। मुख के समान मुख्य। जब अखण्ड सच्चिदानन्द ब्रह्म निखिल गति का चरम लक्ष्य है, निवृत्तिस्थल है, तब ब्रह्म ही मुख्य प्रयोजन है।

आस्तिक हों अथवा नास्तिक, सभी ज्ञानतः अथवा अज्ञानतः सच्चिदानन्द ब्रह्म को ही पाना चाहते हैं। वे ही सबके ईप्सिततम हैं। वे ही मुख्य प्रयोजन हैं। बिना प्रयोजन कोई भी कर्म में प्रवृत्त नहीं होता। "प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्त्तते"। स्वदेशी-विदेशी, आस्तिक-नास्तिक, दार्शनिक वैज्ञानिक विद्वानों से जिज्ञासा करने पर विदित हुआ है कि सुख प्राप्ति तथा दुःख का अभाव ही मुख्य प्रयोजन है। श्रुति का कथन है :—

"यदा वै सुखं लभतेऽथ करोति नासुखं लब्ध्वा करोति सुखमेव लब्ध्वा करोति सुखंत्वेव विजिज्ञासितव्यमिति सुखं भगवोविजिज्ञास इति"—(छान्दोग्य)

---

१. "सर्व्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत्"—(छान्दोग्य) जगत् ब्रह्म से अलग पदार्थ नहीं है। अतीत, अनागत तथा वर्त्तमान रूप कालत्रय में भी वह ब्रह्म से अलग अवस्थित नहीं रहता। अतः श्रुति का कथन है कि जगत् ब्रह्म से ही जात (तज्जम्) है। वह लयकाल में ब्रह्म में लीन है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अर्थात् सुख ही कृति का, कर्म का, इन्द्रिय संयम का, चित्तैकाग्र्य का कारण है। सुख को उद्देश्य समझ कर ही कर्म किया जाता हैं। "इसके द्वारा मैं सुखलाभ करूँगा" यह विश्वास होने पर ही उस कर्म में प्रवृत्ति होती है। सुख क्या है? जिसके उद्देश्य से लोग कर्म में प्रवृत्त होते हैं, उस सुख नामक पदार्थ का स्वरूप क्या है?

"यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखम्"—(छान्दोग्य)

अर्थात् भूमा, महत्, निरतिशय इत्यादि शब्दसमूह सुख के ही पर्यायवाची शब्द हैं। जो भूमा है, महत्, निरतिशय, बहु: तथा अपरिच्छिन्न है, वह सुख हैं। अल्प में सुख नहीं है। परिच्छिन्न में आनन्द नहीं होता। अल्प तो और भी अधिक तृष्णा का कारण है। तृष्णा अ शा ही दु:खवीज है। जो दु:खबीज है, वह कभी भी सुख नहीं हो सकता। विषय का सुख, परिणाम-ताप तथा संस्काररूप त्रिविध दु:ख जड़ित है। वैषयिक सुख ही गौण है। परस्पर विरोधी गुण तथा परिणाम का कारण है। अत: उसे अपरिच्छिन्न एवं अल्प कहा जाता है। यह सब पहले विवृत्त कर चुका हूँ। इनकी पुनरुक्ति का कोई प्रयोजन नहीं है। अब भूमा, अपरिच्छिन्न अथवा ब्रह्म ही सुख है, इस श्रुतिवचन के मर्मग्रहण की चेष्टा की जाती है। चेतन, अचेतन उद्भिद् आदि सभी क्रियाशील रहते हैं। कोई भी सांसारिक पदार्थ क्षणकाल के भी लिये कर्मशून्य नहीं रहता। "कोई जागतिक पदार्थ (नहीह कश्चिदपि)" इस वाक्य के द्वारा केवल चेतन पदार्थ ही अभिप्रेत नहीं है। "अचेतन" को क्या दु:ख-सुख होगा? यह भी जिज्ञासा है। अचेतन पदार्थ भी सुख प्राप्ति के लिये क्रियाशील हैं। इस तथ्य को साधारण व्यक्ति समझ ही नहीं सकते! अत: हम यहाँ यह विवेचना करना चाहते हैं कि क्रियामात्र ही सुखोद्देशक है।

"वैज्ञानिक! (यहाँ विज्ञानविद् Scientific लोगों को सम्बोधित किया जा रहा है) आपने जड़ विज्ञान शास्त्र की आलोचना करके संन्दर्शन तथा परीक्षा (observation and Experinent) रूप साधनद्वय की शरण लेकर प्रकृति रहस्य का उद्भेदन करने के लिये जिस सिद्धान्त का वरण किया है, क्या उसके साथ शास्त्रोक्त वचन ("ब्रह्म ही सुख है, सुख ही सृष्टि का कारण है, चेतन-अचेतन उद्भिद् आदि सब सुख के ही लिये सक्रिय है") का साम्य परिलक्षित होता है? क्या यह सब आपके लिये अर्थशून्य प्रलाप ही है?" कोई-कोई मिथ्या वैज्ञानिक इसके उत्तर में कहेंगे कि यह सब उन्मत्त अथवा मूर्ख का ही प्रलाप वाक्य है। संकीर्ण दृष्टि मिथ्या वैज्ञानिकगण के पास से यही उत्तर प्राप्त होगा! अब यह देखना है कि जो केवलमात्र जड़विज्ञान का यथारीति अनुशीलन करके भी संशयग्रस्त हैं, (जड़विज्ञान से पूर्ण सन्तुष्ट नहीं हैं) वे इस प्रश्न का क्या उत्तर देते हैं? प्रसिद्ध चिन्तनशील

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पाश्चात्य वैज्ञानिक तथा दार्शनिक से जिज्ञासा करने पर इस प्रश्न का जो उत्तर मिलता है, उसका पिण्डित अथवा निर्गलितार्थ (Sum and Substance) अंकित किया जाता है।

वर्त्तमान समय में विज्ञान ही अप्रहित् प्रभाव युक्त है। वही इस समय सार्वभौम सम्राट है। आज विज्ञान के भय से रिलिजन कम्पायित कलेवर हो चुका है। विज्ञान के भय से फिलासफी शंकित है। विज्ञान का नाम सुनते ही धर्मोपदेष्टा का कन्ठावरोध होने लगता है। दार्शनिक के हाथों से लेखनी च्युत हो जाती है। आज विज्ञान ही यथार्थ वांगमुख है। प्रभावशाली के नाम में अद्भुद् शक्ति सन्निहित रहती है। अनेक समय में शक्तिवान् के नामोच्चारण से भी महत् कार्य सिद्ध हो जाता है। ख्यातनामा शक्तिमान् के साथ वर्त्तमान जीवन में जिनका साक्षात्कार नहीं हो सका है, वे भी लोगों के वीच किसी वहुजन सम्मानित प्रभाववान् व्यक्ति को अपना परिचित वतलाकर अभीष्ट साधन कर लेते हैं। अधुनातन, अप्रतिहत् प्रभाव, अमितवीर्य विज्ञान नामधारी पदार्थ के साथ इस जीवन में जिनका कोई परिचय भी नहीं रहा है, वे भी (यथाप्रयोजन) वैज्ञानिक के समान विज्ञान का नाम लेना नहीं भूलते ! विज्ञान से अनभिज्ञ वृद्ध पिता अपने पंचदशवर्षीय पुत्र से कहता है "वेटा ! यज्ञोपवीत परम पवित्र है। इसे क्या कमर में नीचे रखते हैं ? तुम व्राह्मण के वालक हो, यदि और कुछ न कर सको, तथापि त्रिसंध्या अवश्य करना।" वालक इन्ट्रैन्स कक्षा में पढ़ता है। वह एक पुस्तक हेक्सले की Introductory Primer पढ़ता है। वह यथोक्त (So-Called) वैज्ञानिक शिक्षकों की रीति-नीति, आचार व्यवहार का अनुकरण करता है, अतः वह विज्ञान से रहित अपने पिता के विज्ञान विरुद्ध उपदेशों को क्यों ग्रहण करेगा ? वृद्ध के चुप होते ही वालक कहता है "यज्ञोपवीत पवित्र क्यों है ? धागे में क्या पवित्रता होती है ? इसे परम पवित्र माननेपर वैज्ञानिक उपहास करते हैं, असभ्य मानने लगते हैं। अनेक विद्वानों से सुना है कि त्रिसंध्या का कोई भी प्रयोजन नहीं है। ईश्वर हैं तो रहें, उनकी उपासना की कोई जरूरत नहीं है। वे मनुष्य नहीं हैं कि उपासना न करने से रुष्ट हों ! और एक बात है, संध्याविधि वैदिक भाषा में रचित है। अव तो संस्कृत (वैदिक) भाषा मृतभाषा है। यह साधारण के लिये दुर्बोध्य है। वैदिक संस्कृत तो और भी दुर्बोध्य है। अतएव यदि ईश्वर की उपासना ही करना है, तव वंगभाषा (अथवा प्रचलित भाषा) ही उचित है।" पिता आज के शिक्षित नहीं थे। वे हीट (Heat), लाईट (Light), इलेक्ट्रिसिटी (Electricity) तथा मैंगनेटिज्म (Magnetism) का नाम लेने में भी सक्षम नहीं थे। वे वैज्ञानिक उक्ति का भी प्रदर्शन करने में अक्षम थे। अतः वे अवाक् होकर रह गये ! अतः कहता हूँ कि वर्त्तमान में विज्ञान (Science) ही प्रबल प्रतापी है। विज्ञान

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तो ईश्वर का भी पालक एवं संहारक हो रहा है ! जो विज्ञान सम्मत है, वही ग्राह्य है। विज्ञानविरुद्ध त्याज्य माना जाता है। जिस विज्ञान का इतना प्रभाव है, उस विज्ञान का स्वरूप दूर से देखना ही होगा। उपर्युक्त शास्त्रीय उपदेश विज्ञान सम्मत हैं अथवा नहीं हैं, इसका निर्धारण करने के पहले विज्ञान नामधारी तथा वैज्ञानिकों द्वारा वर्णित पदार्थ का रूप दर्शन करना ही होगा।

शास्त्रों में विज्ञान शब्द के अनेक अर्थ हैं। मेदिनी में ज्ञान एवं कर्म (विज्ञानं ज्ञानकर्मणोः) विज्ञान का अर्थ हैं। अमरसिंह मोक्ष में उपयोगी ज्ञान तथा शिल्प एवं शास्त्रविषयिणी बुद्धि को (worldly or profane knowledge, . knowledge from worldly experience opposed to ज्ञान Which is knowledge of ब्रह्म) विज्ञान कहते हैं। श्रुति में आत्मैक्य ज्ञान तथा विवेक बुद्धि को विज्ञान कहा गया है।[1] भगवान गीता में "ज्ञान तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः" कह कर

---

१. "विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवान्नरः। सोऽध्वनः परमाप्नोति तद्विष्णोः परमं-पदम् ॥"—(कठोपनिषद्)

"यह इससे विशिष्ट है" इस प्रकार की विवेक बुद्धि को भी विज्ञान कहा गया है। "विज्ञानं इदमस्माद्विशिष्टमित्येवमादि विवेकः" (सायणभाष्य)

"विज्ञानमानन्दं ब्रह्म" "सर्वं प्राणो अनुत्क्रामन्ति सविज्ञानो भवति सविज्ञान-मेवान्वक्रामति" (वृहदारण्यक)

"विज्ञानं व्यवध्यानाद्भूयो विज्ञानेन वा ऋग्वेदं विजानाति"–(छान्दोग्य)। यहाँ विज्ञान. शब्द पदार्थ विषयक ज्ञान को समझाने वाली विधा के रूप में व्यवहृत हुआ है।"आलयविज्ञान—प्रवृत्तिविज्ञानप्रवाहो विज्ञानस्कन्धः"—(सर्व-दर्शनसंग्रहे बौद्धदर्शन) विज्ञानवादी बौद्ध रूप, विज्ञान, वेदना, संज्ञा तथा संस्कार रूप पंचविध चित्र, चैत्तात्मक स्कंध (Mind and its modification) को बतलाते हैं। जिसके द्वारा विषय कल्पित होता है, (By which objects are discriminated) वह रूप है। सविषय इद्रियाँ ही रूपस्कन्ध (The Sensible world) हैं। आलय विज्ञान प्रवाह (The stream of subject recognitions) तथा प्रवृत्ति विज्ञान प्रवाह (Presentments of activity) का नाम है विज्ञानस्कन्ध। आलय विज्ञान तथा प्रवृत्ति विज्ञान के रूप में विज्ञान द्विविध है। "यह घट है, (अयंघटः) इत्यादि रूप विज्ञान को प्रवृत्ति विज्ञान कहते हैं। "मैं जानता हूँ" इस प्रकार के ज्ञान (अहं जानामि) को आलय विज्ञान कहा गया है। "तदेव आत्मा इत्युच्चते"। इस आलय विज्ञान को ही ये लोग "आत्मा" कहते है। विज्ञान शब्द से विज्ञानवादी बौद्धों का वही तात्पर्य है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्वानुभव के रूप में विज्ञान का अर्थ करते हैं। पुराणों में निर्मल, निर्विकल्प, अव्यय ब्रह्मज्ञान को समझानेवाले विज्ञान शब्द का बहुशः प्रयोग[1] दृष्ट होता है। यथाः—

"तस्माद्विज्ञानमेवास्ति न प्रपंचो न संस्थितिः।
अज्ञानेनावृतंलोके विज्ञानं तेन मुह्यति॥
विज्ञानं निर्मलं सूक्ष्मं निर्विकल्पं यदव्ययम्।
अज्ञानमितरं सर्वं विज्ञानमिति तन्मतम्॥"

(कूर्मपुराण, द्वितीय अध्याय)

साईन्स शब्द विज्ञान शब्द द्वारा अनुमित होता है। अमर सिंह ने विज्ञान शब्द का जो अर्थ किया है, आंग्लभाषा में साईन्स का भी यहीं अर्थ है। भगवान गीता में जिस अर्थ में विज्ञान शब्द का प्रयोग करते हैं, उस अर्थ में हम पाश्चात्य साईन्स तथा फिलासफी (Philosophy) दोनों को विज्ञान कहते हैं। पाश्चात्य विज्ञान तथा पाश्चात्यदर्शन आज तक इन्द्रियग्राह्य स्थूल जगत की सीमा का अतिक्रमण नहीं कर सके![2] विद्वान वेन ने विज्ञान का जो श्रेणीविभाग किया है, उससे ज्ञात होता है कि

---

१. विद्वान वैज्ञानिक टाईन्डेल का कथन है कि विज्ञान (Science) वस्तु समूह की मध्यावस्था का अतीत-अनागत की अन्तरालावस्था (अर्थात् जो हमारे लिये प्रवृति संज्ञा से परिचित है) का तथा उसके कार्य का दर्शन करता है, तथापि यह प्रकृति के आदि तथा अन्त का कोई भी समाचार नहीं जानता। किस वस्तु ने अथवा व्यक्ति ने सूर्य की सृष्टि की है? इसकी रश्मि को व्यपदिष्ट सामर्थ्य किसने प्रदान किया है? किस व्यक्ति अथवा वस्तु से परमाणुपुंज की सृष्टि हुई हैं, तथा किसने उसे विविध इतरेतर कार्यकारिणी आश्चर्यरूपा भूतशक्ति प्रदान किया है, यह विज्ञान नहीं जानता। इस रहस्य का भेदन करने का उपक्रम करने पर भी इसका रहस्य विज्ञान नहीं जानता।

2. " Science understands much of this intermediate phase of thiag that we call nature, of which it is the product, but sciencc know nothing of the origin of destiny of naturc, Who or what made the sun, and gave his rays their alleged power? Who or what made and bestowed upon the ultimate particles of matter their wondrous power of varied interaction? Science does not know the mystry, though pushed back, remains unaltered" (Fragments of Science, Vol II; P. 52,, Tyndall)

विज्ञान द्वारा क्या प्रयोजन सिद्ध होता है, विज्ञान का अधिकार कितना है, यह इस कथन से ज्ञात हो जाता है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तर्कशास्त्र (Logic) विज्ञान का आद्यप्रदेश है तथा मनस्तत्व (Psychology) अन्त्यभूमि है। विद्वान वेन, स्पेन्सर, सैली प्रभृति मनस्तत्वविद् विद्वानों का ग्रन्थपाठ करने से विदित होता है कि इन लोगों ने भौतिक अथवा भूतशास्त्र की व्याख्या का प्रयत्न किया है। जिन्हें शरीर विधानशास्त्र (Phyciology) का किंचित भी ज्ञान है, वे इन विद्वानों के ग्रंथ द्वारा यह जान सकते हैं कि उनसे विशेष लाभ नहीं है। किंबहुना, शरीर विधानशास्त्र व्युत्पन्न करने के लिये उच्च गणित (higher Mathmatics), रसायनशास्त्र (Chemistry), शरीरशास्त्र (Anatomy) तथा जड़ पदार्थ विद्या (Physics) का ज्ञान होना आवश्यक है। चिन्तनशील विद्वान स्पेन्सर फिलासफी के निश्चिततत्व (DATA) का निर्देश करते समय जो कुछ कहते हैं, उसके द्वारा भी यह स्पष्ट हो जाता है कि जगत का वर्तमान अध्वा ही फिलासफी का चिन्तनीय विषय है। विज्ञान शब्द को पाश्चात्य फिलासफी तथा साईन्स का बोधक कहा जा सकता है।

क्या विज्ञान (Science) साधारण ज्ञान (From Ordinary knowledge) से भिन्न पदार्थ है? क्या सामान्य एवं साधारण ज्ञान के साथ इसका कोई साम्य नहीं है? विद्वान स्पेन्सर अपने प्रवन्ध संग्रह (essays) में "विज्ञान जाति निर्वाचन" (The genesis of Science) शीर्षक प्रबन्ध में इस प्रश्न की मीमांसा करते हैं। उनके अनुसार "विज्ञान (Scientific knowledge) सामान्य ज्ञान से पृथक् है" यह अनिश्चित, अमूलक (Vague) विश्वास मानव बुद्धि में स्थित है। ग्रीक विद्वान केवल गणित (Mathmetics) को ही प्रकृत ज्ञान मानते थे। विचार करने से ज्ञात होगा कि विज्ञान तथा साधारण ज्ञान में केवल मात्र बाह्य प्रभेद है। वास्तविक पार्थक्य नहीं है। दोनों में समशक्ति समूह का व्यवहार होता है। दोनों में उनका क्रियाक्रम समान है। यदि विज्ञान को आनुपूर्व अथवा विहित ज्ञान (Science is organized Knowledge) कहते हैं, उस स्थिति में वह साधारण ज्ञान से सम्पूर्णतः पृथक् विवेचित नहीं हो सकता। कारण यह है कि ज्ञान अल्पविस्तर रूप से आनुपूर्व है। साधारण ग्रहकार्य अथवा क्षेत्रकार्य करते समय सम्वद्ध कृत्य की पूर्वभावना आवश्यक होती है। युक्ति तथा तर्क संयोग का प्रयोजन होता है। साथ ही भविष्य के गर्भ में निहित कर्मफल की भी प्रतीक्षा करनी पड़ती है। यदि यह कहें कि विज्ञान में अग्रदृष्टि (Prevision) है अथवा पूर्वदृष्टि है, जिस देश में अथवा जिस काल में जिन-जिन कारणों से-जिस अनुक्रम से जो घटना संघटित होगी, विज्ञान उसे पहले से कह देगा, तव भी वह साधारण ज्ञान से सर्वथा व्यावर्त्तित नहीं है। कारण यह है कि साधारण ज्ञान में भी यह अग्रदृष्टि (Prevision) है। यदि ऐसा कहा जाये कि विज्ञान अभ्रान्त पूर्वदर्शी है, साधारण ज्ञान अभ्रान्त पूर्वद्रष्टा नहीं है, तथा विज्ञान साधारण ज्ञान से भिन्न है, इससे भी विज्ञान एवं साधारण ज्ञान का

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कल्पित इतर व्यावर्त्तकत्व प्रतिष्ठित नहीं हो सकता। विज्ञान सर्वज्ञ सत्यदर्शी अथवा अप्रमत्त रूप नहीं है। यही नहीं, कोई-कोई विज्ञान प्रभाग (जैसे Physiology शरीरशास्त्र) कभी भी सत्यनिरूपक नहीं हो सकता, यह सुनिश्चित है।[1]

अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि विज्ञान तथा साधारण ज्ञान का पारस्परिक पार्थक्य कल्पित है, उसके इस पार्थक्य की तार्किक स्थिति अथवा सत्ता नहीं है।

---

(1) "There has ever prevailed among men a vague notion that scieintific knowledge differs in nature from ordinary knowledge. By the Greeks, with whom mathmatics-litrally things learnt-was alone considered as knowledge proper, the distinction must have been strongly felt, and it has ever since maintained itself in the general mind. Though considering the contrast between the achievments of sience and those of daily unmethodic thinking, it is not surprising that such a distinction has been assumed, yet it needs but to arise a little above the common point of view, to see that no such distinction can really exist, or that at best, it is but a superficial distinction. The same faculties are employed in both cases; and in both cases their mode of operation is fundamentally the same.

If we say that science is organized knowledge, we are met by the truth that all knowledge is organized in a greater or less degree-that the commonest actions of the household and the field presuppose facts colligatad, inferences drawn, results expected,......If, again, we say that science is prevision is a seeing beforehand is a knowing in what times, places, combi nations or sequencs, specified phenomana wlll be found, we are yet obliged to confess that the definiations includes much that is utterly foreign to science in its orinary accptation.

If, once more, we say that science is exact prevision, we still fail to establish the supposed difference......we find that much of what we call science is not exact, and that some of it, as physiology, can never become exact."

(Essays Scientific Political and Speculative; Vol, P. 116-17 by H. Spencer)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इतने पर भी विज्ञान की स्थिति साधारण ज्ञान से अलग है। हमें ऐसा ही अनुभव होता है। इन दोनों में इतरव्यावर्त्तक सीमारेखा, विभाजन रेखा अंकित करना चाहे जितनी भी कठिन हो, व्यावहारिक रूप से इन दोनों की अभिन्नता परिगृहीत नहीं होती। अब यह प्रश्न उत्थित होता है कि कैसे सम्बन्ध सूत्र से इनकी पारस्परिक सम्बद्धता है?[1] विद्वान स्पेन्सर इसके उत्तर में कहते हैं कि साधारण ज्ञान स्थूल तथा अदूरदर्शी होता है। वह इन्द्रियग्राह्य है, उसमें आसन्न, नियत अथवा स्थिर प्राकृतिक घटनापुंज की आकलन शक्ति रहती है। विज्ञान सूक्ष्म तथा दूरदर्शी विद्या है। विज्ञान का आद्यकार्य है, साधारण कार्यकारण सम्बन्ध का निर्णय। विशिष्ट कार्यकारण सम्बन्ध का निर्णय करना विज्ञान का अन्तःकार्य (We begin by discovering a relation) है। किस प्रकार की घटना अथवा कार्य किस प्रकार की निर्दिष्टावस्था में संघटित हो सकता है, उसका निराकरण प्राथमिक विज्ञान निष्पत्ति है। अनागत घटनापुंज का परिणाम अथवा संख्यात्मक अवधारण चरम विज्ञान साधन कहा गया है। अर्थात् अपुष्ट विज्ञान साधरण प्रकार का है। पूर्वदर्शन (Qualitative Prevision) ही परिपुष्ट विज्ञान (Developed Science) है। वह संख्यात्मक अथवा सांख्य भविष्यदर्शन (Qnantitative Prevision) है।[2]

---

(1) "Seeing thus that the assumed distinction between scientific knowledge and common knowledge is not logically justifiable, and get feeling, as we must, that however impossble it may be draw a line between them, the two are not practically identical, there arises the question—what is the relationship that exists between them" (वही, वाल्यूम I; P 117-118

(2) "On reconsidiering them, it will be observed that those portions of ordinary knowledge which are identical in character with scientific knowledge, comprehend only such combinations of phenomena as are directly cognizable by the senses ...we begin by discovering a relation we end by discovering that relation. Our first achievement is to foretell the kind of phenomena which will occur under specific conditions. Our last achievement is to foretell not only the kind but the amount, or to reduce the proposition to its most definite form—undeveloped science is qualitative prevision, developed seience is quantitative prevision." (वही, पृ० १२०)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विज्ञान का श्रेणीविभाग अथवा वर्गक्रम विन्यास (Classification of Sciences)—विज्ञान तथा साधारण ज्ञान के साधर्म्य-वैधर्म्य विचार के अनन्तर विद्वान स्पेन्सर ने विज्ञान के श्रेणी विभाग अथवा वर्गक्रम विन्यास सम्बन्धित तर्क उत्थापन किया है। उक्त विद्वान ने इस विचार में प्रवृत्त होकर यथाक्रम से ओकन (Oken), हेगेल (Hegel) तथा कामत (Comte) द्वारा विन्यस्त विज्ञान वर्गक्रम की समालोचना की है। विद्वान स्पेन्सर ने उक्त वैज्ञानिकों के मत का जिस प्रकार से खण्डन किया है, उसका प्रदर्शन करना हमारा लक्ष्य नहीं है। हमारा उद्देश्य है यह अध्ययन करना कि सायन्स (Science) के रूप में पाश्चात्य विद्वानों ने किस पदार्थ को इंगित किया है, साईन्स का प्रतिपाद्य विषय क्या है, यह समझना हमारा साम्प्रतिक उद्देश्य है। विद्वान ओकन तथा हेगेल के मतानुसार प्रकृतितत्व निरूपण तथा महती सृष्टि सम्बन्धित चिन्तन-प्रतिचिन्तन एक ही तथ्य है।[1]

गणित सार्वभौम विज्ञान है (Mathmatics is the universal science) भूताध्यात्मविद्या (Physico-Philosophy) भी वही है। यह भी सार्वभौम विज्ञान है। गणित तथा भूताध्यात्मविद्या भी परस्परतः सम्बद्ध है। गणित (Mathmatics) वस्तुशून्य आकाश विषयक विज्ञान है (Mathmatics is, however, a science of mere forms without substance) अतएव भूताध्यात्मविद्या (Physico-Philosophy), वस्तुपेतगणित (Physico-Philosophy, is, therefore, mathematics endowed with substance) है। विद्वान ओकेन तथा हेगेल के मत से शून्य (zero) ही गणित का मूल है। (The fundemental principle of all mathematics is the zero)। शून्य स्वयं में कोई पदार्थ नहीं है, अतः गणित असद्भूमिक है। गणित की उत्पत्ति शून्यतत्व से होती है।[2]

---

(1) "Oken seems to hold in common with Hegel, that to philosophize on nature is to rethink the great thought of creation."

(वही, पृष्ठ 126)

(2) 'Mathematics is the universal science, so also is physio-philosophy, although it is only a part, or rather but a condition of the universe; both are one, or mutually congruent."

"Mathematics is howwer, a science of mere forms without substance. Physio-philosophy is, therefore, mathmetics endowed with substance."

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अतः असत् से सत् की उत्पत्ति हो सकना संभव हो जाता है। गणित का प्रमेय ही शून्यान्वयी प्रमेयात्मक है। यहां शून्यवादी बौद्धगण का मत भी विचारणीय है। ओकन शून्यवादी हैं, अतः वे शून्य से जगत् की सृष्टि होना संभव मानते हैं। विद्वान स्पेन्सर का कथन है कि शून्य ही गणित का मूलतत्व है, यह किसने कहा? यदि हम कहें कि समानता (Equality) ही गणित का मूलतत्व है, उस स्थिति में ओकन का मत (जो शून्य से जगत्सृष्टि का प्रतिपादन करता है, (Cosmogrony) है) अन्तर्ध्यान हो जाता है।[1]

विद्वान हेगेल (Hegel) फिलासफी (Philosophy) को भागत्रय में विभक्त करते हैं, न्याय अथवा तर्कशास्त्र (Logic), प्राकृतिक विज्ञान (Philosophy of Nature) तथा मनोविज्ञान (Philosophy of Mind)[2]। विद्वान कामट विज्ञान को ६ भागों में विभाजित करते हैं, यथा गणित (Methematic), नक्षत्र-विद्या अथवा ज्योतिष (Astronomy), भौतिक पदार्थ विज्ञान (Physics), रसायन शास्त्र (Chemistry), शरीर विधानशास्त्र (Physiology), समाज-

---

"The highest mathmatical idea or the fundmental principle of all mathmatics is the Zero."

"Zero is in itself nothing. Mathmatics is based upon nothing and, cousequently, arises out of nothing."

Out of nothing, therefore, it is possible for something to arise for mathmatics, consisting of proposition, is something, in relation to "O".— (वही, पृष्ठ 126-27)

1. "If now we deny, as we do deny, that the highest mathematical idea is zero; if, on the other hand, we assert, as we do assert, that the fundamental idea underlying all mathematics, is that of equality; the whole of Oken's cosmogony disappears" —(वही पृष्ठ १२७)

2. "He (Hegel) divides Philosophy into three parts : (1) Logic, or the science of the idea in itself, the pure idea, (2) The Philosophy of Nature, or the science of the idea considered under its other form—of the idea as nature. (3) The philosopoy of the mind or the science of the idea in its return to itself." (वही, पृ. 128)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विज्ञान (Social Physics)। विद्वान स्पेन्सर के मतानुसार विज्ञान का क्रमिक विन्यास (Arranging the sciences in a serial order) संभव नही है। विद्वान कामट जब विज्ञान समूह को एक ही स्कन्ध की भिन्न-भिन्न शाखायें मानते हैं, (Sciences are branches of a single trunk) तब वे स्वयं ही विज्ञान के क्रमिक विन्यास को अस्वीकार कर देते हैं। विद्वान कामट की इस उपलब्धि के सम्बन्ध में विद्वान स्पेन्सर कहते हैं कि एक ही सत्य का अधांश मात्र यहाँ प्रव्यक्त हो रहा है। विज्ञान केवल एक स्कंध की भिन्न-भिन्न शाखा ही नहीं है, प्रत्युत् वह परस्पर एक दूसरे को धारण करता है। एक दूसरे की सहायता करता है, पारस्परिक रूप से विद्यमात्त होकर रहता है। अतः विज्ञान का क्रमिक विन्यास नहीं हो सकता।[1] शास्त्रपाठ से इस सम्बन्ध में क्या विदित हो रहा है? जो शास्त्रपाठ से ज्ञात होता है, वह इस प्रकार से है :—

"विधातुस्तस्य लोकानामंगो ।ंगनिबन्धनाः।
विद्याभेदा प्रजायन्ते ज्ञानसंस्कारहेतवः ॥—(वाक्यपदीय)

अर्थात्, सर्वलोकविधाता ने प्रणव (अथवा वेद) से अंगोपांग रूप ज्ञान-संस्कार हेतु समस्त विद्याओं का विस्तार किया है। वेदाख्यरूपप्रसिद्ध ब्रह्म के अंग से ज्योतिषादि विद्या तथा उपांग से चिकित्सादि विद्याभेद की उत्पत्ति होती है।[2] न्याय उपांग हैं। शुक्राचार्य स्वप्रणीत नीतिसार में कहते हैं :—

"अंगानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः।
धर्मशास्त्रपुराणानि त्रयीदं सर्वमुच्यते ॥"

---

1. "From our present point-of-view, then, it becoms obvious that the conception of a serial arrangement of the sciences is a vicious one. It is not simply that the schemes we have examined are untenable, but it is that the sciences can not be rightly pleaced in any liner order whatever .. There is no true fitiation of the sciences. The whole hypotheses is fundamentally false."—(वही, पृष्ठ 144)
2. "एवं च विद्याभेदाः प्रणवात्मतया वेदं नातिक्रामन्ति। तदाहुः सर्वावाचो वेदमनुप्रविष्टा ना वेदविन्मनुते ब्रह्म किंचिदिति। एवं च प्रणवादेव सांगोपांग श्रुतिस्मृतित्रयान्ता विद्याभागा प्रभवन्ति सम्यग् ज्ञानहेतवः पुरुषसंस्कारहेतवश्च तस्य वेदाख्यस्य प्रसिद्धस्य ब्रह्मणोऽगंभ्या ज्योतिषादयः उपांगेभ्यश्चिकित्सादयो विद्याभेदाः प्रभवन्ति।"—(वाक्यपदीयटीका)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अर्थात्, शिक्षाकल्पादि षड़ंग, चतुर्वेद मीमांसा, न्यायविस्तर, तर्क प्रपंच, मन्वादि प्रणीत धर्मशास्त्र एवं पुराण को त्रयी कहा जाता है। त्रयी शब्द उक्त शास्त्र समुदाय का वाचक है। 'त्रि' शब्द के उत्तर में अवयवार्थं तयप् (पाणिनी) प्रत्यय तथा स्त्रीलिंग ङीप् प्रत्यय से त्रयी पद सिद्ध हो जाता है। ऋक, साम एवं यजुः जिसके अवयव हैं, जो संहति हैं, वह त्रयी हैं। अमर कोष मे उक्त है "वेदास्त्रयस्त्रयी"। अर्थात् वेदत्रय संघात का नाम त्रयी है। जब वेद से ही समस्त शास्त्रसमूह बहिर्गत हैं, उस स्थिति में समस्त शास्त्र त्रयीपदवाच्य हैं। (इसका वास्तविक भावार्थ अत्यन्त सूक्ष्म है) समस्त शास्त्र वेद से ही प्रसृत हैं। वे उसी के आंगोपांग हैं। अब यह जिज्ञासा है कि शास्त्र विकास का क्रम नियम है अथवा नहीं ? प्रश्न के समाधान के लिये हम एकंवार भगवान धन्वन्तरि का आश्रय लेकर उनके वचनों का उद्धरण देते हैं। गर्भ का कौन सा अंग सबसे पहले प्रव्यक्त तथा परिपुष्ट होता है, इस सम्बन्ध में अनेक मत हैं। किसी के अनुसार शिर, देह का मूलतत्व है। अतः सर्वाग्र में शिर सम्भूत होता हैं। किसी के मत से हृदय सर्वाग्र में विकसित होता है। किसी के मत से नाभि प्रथमजात अंग है। भगवान धन्वन्तरि इस वहुसुख सिद्धान्त रूप गहन प्रश्न का समीचीन उत्तर समझाते हुये शिष्यों से कहते है कि गर्भ का सर्वांग प्रत्यंग वंशाकुंर अथवा आम्रफल के समान युगपत् रूप से, एक साथ आविर्भूत होता है। यद्यपि परिपक्व फल का प्रत्येक अंग प्रत्यंग कालप्रकर्षण के कारण प्रव्यक्त होकर पृथक् रूपेण परिदृष्ट होता है, किन्तु तरुणावस्था में (कच्ची स्थिति में) सूक्ष्मत्व के कारण उपलब्ध अथवा विदित नहीं होता। इसी प्रकार गर्भस्थ भ्रूण से अंग-प्रत्यंग की विद्यमानता रहने पर भी, (सूक्ष्मत्व के कारण) उनको देखा नहीं जा सकता। उन अंग-प्रत्यंग की (उस अवस्था में) उपलब्धि नहीं होती। काल (समय) व्यतीत होने पर वे परिपुष्ट स्थिति में पृथक् रूप से दृष्टिगोचर होने लगते हैं। समस्त शास्त्र वेद के ही अंग एवं उपांग हैं। वे सब युगपत परिवद्धित (Simultaneously developed) होते हैं।

विद्वान स्पेन्सर मेटाफिजीशियन (Metaphysician) लोगों के प्रति खड्गहस्त प्रतीत होते हैं। इसी के साथ वे जर्मन दार्शनिकों के विशेष विद्वेषी भी है। मेटाफिजीशियन विद्वानों का विचार है कि जब चिन्ता क्रमपरिणामिनी है, तब प्रकृति भी क्रमपरिणामिनी ही है। ज्ञान का विकास क्रम परम्परा में होता है। यह इन विद्वानों का सिद्धान्त तथा उसे पुष्ट करने की युक्ति है। विद्वान आगस्ट कामत इन्ही मेटाफिजीशियन विद्वानों के मत का अवलम्बन लेते हुये विज्ञान का क्रमिक विन्यास करते हैं। विद्वान स्पेन्सर का कथन है कि जब विद्वान कामत जर्मन विद्वानों के समान प्रकृति को चैतन्य की जड़ीभूत अवस्था नहीं मानते (Nature is petrified intelligence), तब वे विज्ञान का क्रमविन्यास क्यों करते हैं ? आगस्ट कामत के समान

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चिन्तनशील लोगों ने मेटाफिजीशियनों के भ्रमपूर्ण, युक्तिविहीन मत का अनुवर्त्तीन क्यों किया ? हम स्पेन्सर की इस उक्ति का स्मरण करते हुये यह कहना उचित मानते हैं कि भ्रमात्मक रूप से निर्वाचित विषयों में भी सचराचर सत्य की आत्मा का दर्शन हो जाता है। अतः यह कैसे कहा जा सकता है कि मेटाफिजीशियनों के कथन में कुछ भी सत्य नहीं है ? जर्मन दार्शनिकों ने विश्व ब्रह्माण्ड को जड़ीभूत चैतन्य कहा है, इस कारण से स्पेन्सर उनका उपहास करते प्रतीत होते हैं, तथापि जो विश्वब्राह्माण्ड को शक्ति का परिणाम मान कर संतुष्ट हो जाते हैं क्या उन्होने विश्व के रहस्य को जान लिया हैं ? विद्वान स्पेन्सर ने यह स्वयं स्वीकार किया है कि उक्त जड़शक्तिवादी विद्वानों के अनुसार समस्त वस्तुसमूह का गुण अथवा धर्म शक्ति का ही विकास है शक्ति का परिणाम है, तथापि उन्हें यह स्थिर रूप से ज्ञात नहीं हो सका है कि शक्ति (Force) कौन सा पदार्थ है ?[1]

धर्म का चित्राकंन करते समय इसकी विशद आलोचना करने की इच्छा है। अव प्रस्तावित विषय का अनुसरण करता हूँ। विद्वान स्पेन्सर विज्ञान को अवकृष्ट (Abstract), अवकृष्ट समवेत (Abstract Concrete) तथा समवेत (Concrete) रूप से त्रिधा विभक्त करते हैं।[2]

विज्ञान के प्रत्येक श्रेणीविभाग का लक्षण तथा अभिधेय निर्वाचन—इस विषय के लिये हम विद्वान वेन द्वारा कथित विज्ञान विभाग का अनुसरण करते हैं। वह है न्याय तर्क (Logic) गणित शास्त्र (mathematics) यन्त्र शिल्पविद्या (Mechanical physics or Mechanics) भौतिक विज्ञान (Molecular Phycics) रसायन शास्त्र (Chemistry) प्राणविद्या (Biology) मनोविज्ञान (Psychology) रूप विज्ञान विभाग। हम सर्वप्रथम न्याय अथवा तर्कशास्त्र को अभिधेय अथवा प्रतिपाद्य विषय समझ कर वहीं से प्रारंमण करते हैं।

---

1. "Though he may Suceed in rosolving all properties of objects into manifestations of Force, he is not thereby enabled to realize what force is, but finds, on the controry, that the more he thinks about it, the more he is baffled." (Essays Scientific, Vol. I, P. 59)
2. "Not Content however, with a simp'e binary division according to this leading contrast, Mr. Spencer proposes a threefold division, by interpolating between the extremes a middle class part by abstract and partly concrete, to be termed Abstract concrete. The three classes are Abstract, Abstract-Concrete and Concrete"— (Bain's Logic, Part I, P 232)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

न्यायशास्त्र (Logic) का लक्षण तथा अभिधेय निर्णय—विज्ञान विभाग करते समय सर्वप्रथम विद्वान वेन ने लाजिक का नाम निर्देश क्यों किया ? क्या यह विज्ञान है ? विद्वान जेवन्स कहते हैं कि मेरे मत से यह प्रधान विज्ञान है । यहीं है समस्त विज्ञानों की भित्ति ।[1] शास्त्र कहते हैं कि आन्वीक्षिकी विद्या (Logic) अन्यान्य विज्ञान एवं विद्यासमूह का प्रदीप है । इसके द्वारा अन्य विद्यासमूह प्रकाशित होते हैं । यह सर्वकर्ममय उपाय तथा सर्वधर्माश्रय है ।[2]

लाजिक विज्ञान है अथवा शिल्प है :—पाश्चात्य वैज्ञानिकों (नैयायिक) में इस सम्बन्ध में मतभेद है । विद्वान मिल कहते हैं कि लाजिक सचराचर की निर्दिष्ट भूमिका से किसी प्रकार के सिद्धान्त तक पहुँचाने वाला शिल्प है । हैटली के मत से लाजिक केवल शिल्प नहीं है ।

शिल्प तथा विज्ञान में क्या भेद है ?,—लाजिक शिल्प है अथवा विज्ञान, अथवा यह दोनों ही है, यह ज्ञात करने के लिये दोनों के मध्य का (शिल्प तथा विज्ञान के मध्म का) पार्थक्य जानना आवश्यक है । जगत् में जो भी घटना संघटित होती है, वह निर्दिष्ट नियमों के अधीन है । "कार्यमात्र ही कारणाधीन है, विना कारण कोई कार्य संघटित नहीं होता" इन सब के साथ "जगत् में जो भी घटना संघटित होनी है, वह निर्दिष्ट नियमाधीन है". इस वाक्य का कोई पार्थक्य नहीं है । अकस्मात् = दैववशात् संभव होना अर्थात् असम्भव । जेवन्स, लाप्लेस प्रभृति विद्वान स्पष्टरूप से स्वीकार करते हैं कि अकस्मात् आयतन (Chance) की कोई भी मान्यता सिद्धान्त का विषय (Subjed of Theory) नहीं हो सकती । अतः इसी कारण कार्योत्पादक तथा कार्यनियामक रूप किसी दैव (Chance) का अस्तित्व ही नहीं है । चान्स (Chance) शब्द का मौलिक अर्थ है पतन (Falling) ।[3] जिन घटनाओं के कारण का वर्णन करने में हम असमर्थ हो जाते हैं, उन्हें हम स्वल्प दर्शिता के कारण आकस्मिक (Result of Chance) कहकर सन्तुष्ट हो जाते हैं ।[4] कोई भी नियम का अतिक्रमण करके स्थित नहीं रह सकता ।

---

1. "In my opinion logic is the superior science, general basis of mathematics as well as other sciences"—
(The Principles of Science, P 151)
2. "प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम् ।
आश्रयः सर्वधर्माणां विद्योद्देशे-प्रकीर्तिता ।।" —(न्यायसूत्रभाष्यघृत कारिका.)
3. Chance शब्द लैटिन के Cado = To fall से व्युत्पन्न है ।
4. Chance cannot be the subject of the theory, because there is really no such thing as chance, regarded as producing and go-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दर्शन तथा परीक्षा के द्वारा (जहाँतक सम्भव है) प्राकृतिक नियमों का आविष्कार किया जाता है। किस नियम से किस प्रकार का अवस्थागत परिवर्त्तन होता है, किन-किन कारणों के समवाय से कौन कार्य सम्पन्न होता है, इसका निर्धारण करना विज्ञान का कार्य है। एक लौह खण्ड उपर की ओर फेंकने के उपरान्त पृथ्वी के अंक में प्रत्यागत होता है (नीचे की ओर गिरता है)। यह एक प्राकृतिक घटना अथवा कार्य है। जिज्ञासा होती है कि इसका कारण क्या है? विज्ञान ने दर्शन तथा परीक्षण द्वारा यह स्थिर सिद्धान्त उद्घाटित किया है कि जैसे चुम्बक लौह का आकर्षण करता है, उसी प्रकार संसार की समस्त वस्तु परस्परतः एक दूसरे का आकर्षण करती रहती हैं। पृथ्वी विविध वस्तु की समष्टि है। इसी कारण उसकी आकर्षण शक्ति इतनी प्रबल है। यह आकर्षण ही गुरुत्व का कारण है। गुरुत्व के ही कारण उपर की ओर फेंकी गई वस्तु का अधः पतन होता है। दर्शन तथा परीक्षा के द्वारा इस प्रकार के विश्वव्यापी नियमों के निरुपण के अनन्तर अनागत व्यापार समूह का गणना द्वारा निर्धारण करना विज्ञान का उद्देश्य है।

शिल्प का क्या कार्य है? विज्ञान द्वारा आविष्कृत नियमों को हमारे कर्म में प्रयुक्त करना शिल्प का कार्य है।[1] तब क्या शिल्प विज्ञान से प्रसृत है, विज्ञान प्रसूत है? कतिपय पाश्चात्य वैज्ञानिक इसके उत्तर में कहते हैं नहीं, शिल्प सर्वत्र विज्ञान प्रसूत नहीं है, यह विज्ञान सापेक्ष है। अनेक स्थल पर प्रथमावस्था में शिल्प तो विज्ञान का अग्रज है। विज्ञानानुशीलनार्थ विविध विस्तीर्ण दर्शन की आवश्यकता है। शिल्प का कर्मक्षेत्र इतना विस्तृत नहीं है। मैं इस सिद्धान्त का पूर्ण अनुमोदन नहीं

---

verning events. The word chance signifies falling ....Chance then exists not in nature and cannot co-exist with knowledge; it is merely an expression, as Laplace remarked, for our ignorance of the causes in action, and our consequent inability to predict the ressult, or to bring it about infalibly. In nature the happening of an event has been predetirmined from the first fashioning of the universe"

—(The Principles of Science, p. 198)

1. "To know the theory of a thing is a science, to know how to use it successfully is art"

—(Occult Science in Medicine, by Hartmann, p. 72)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कर सकता। विज्ञान तथा शिल्प का जो लक्षण प्रस्तुत किया गया है, वह अव्यपदापि दोष रहित नहीं है। यथानिर्दिष्ट विज्ञान को वैज्ञानिक अनेक बार (सूक्ष्मतम कारण प्रदेश में प्रवेश करने के पहले) यथोक्त शिल्प लक्षण के द्वारा अभिहित करते हैं। शिल्प तो विज्ञान का ही भेद है। प्रक्रिया अथवा प्रयोग विज्ञान ही शिल्प पद का अर्थ है। चिन्तनशील दार्शनिक स्पेन्सर भी ऐसा ही मानते हैं।[1] लाजिक ही अविज्ञाततत्व कारणोपपत्तिद्वारक, तत्व ज्ञानार्थक मानसिक कार्य का, मनन-चिन्तन व्यापार का सिद्धान्त निर्धारण करता है। यह इस प्रकार की कार्यविधि का व्याकरण (Analysis) है। विद्वान् ह्वैटली ने इसी कारण तर्क (Logic) को मनन शिल्प कहा है तथा इसे विज्ञान माना है, क्यों कि इसकी निर्दिष्ट नियमावलि के द्वारा हम यथा-यथ तथा शुद्ध रूप से चिन्तना करने में समर्थ हो जाते हैं।[2] विद्वान यूबर्वेग लाजिक ज्ञान को आकार तथा व्यवहार के अनुसार शुद्ध अथवा साधारण (Pure and General) तथा व्यावहारिक अथवा विशेष (Applied or particuler) रूप से

---

1. "If, as one will deny, art is applied knowledge, then such portion of scientific investigation as consists of applied knowledge, is art. So that we may even say that as soon as any prevision in science passes in science passes out of its orginally passive state, and is employed for other previsions, it passes from theory in to practice, becomes science in action becomes art" —(Essays Scientific, Political and Speculative, vol I, p. 190)

वेद का ज्ञानकाण्ड, कर्मकाण्ड तथा उपासनारूप काण्डत्रय क्या है ? योग का ज्ञान, भक्ति तथा कर्म रूप भागत्रय क्यों हैं ? वास्तव में ये सभी विभाजन किसी भिन्न पदार्थ रूप से नहीं है, यह इस अध्ययन से विदित होता है।

2. "Logic has often been called the Art of reasoning. A writer (Archbishop Whatlay) who has done more than any other living person to restore this study to the rank from which it had fallen in the estimation of the cultivated class in our own country, has adopted the above definition with an amandment; he has defined Logic to be the science, as well as the art, of reasoning, meaning by the former term the analysis of the mental process which takes place whenever... ... ...for conducting the process correctly"

—(Mill's Logic, vol I, p. 2)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विभक्त किया है।[1] विद्वान वेन कहते हैं कि संगतता, योग्यता (Consistency), अवनयन (Deduction) तथा सारूप्य एकरूपता—एकविधा (uniformity), मूल, सर्वगत अथवा सार्वजनिक तत्व समूह ही लाजिक का विषय है। लाजिक के साथ इनका प्रतिपाद्य प्रतिपादक सम्बन्ध है। लाजिक को अन्य सभी विज्ञान की भित्ति कहते है। लाजिक के (व्यक्तभाव से अथवा प्रव्यक्तभाव से) सिद्धान्त अथवा उसके द्वारा स्वीकृत तत्व को ग्रहण न करने पर किसी भी प्रकार के विज्ञान की प्रतिष्ठा सम्भव नहीं है। अतएव लाजिक समस्त विज्ञानों का (Scientia Scienti arum) है।[2]

---

1. "The form of laws of knowledge can be treated partly in their general character and partly in the particular modifications which they take according to the different nature of the object-matter known. The first is the problem of pure and general, the second, that of applied or particular Logic, pure Logic teaches both the laws of immediate knowledge or perception and those of mediate knowledge or thought' (Uberwe's Logic, p. 15) वैकल्पिक अथवा वैध (Formal) तथा वास्तव (Material), रूप से लाजिक को द्विधा विभक्त किया गया है। कोई-कोई पाश्चात्य वैज्ञानिक कहते हैं कि वैध तर्क एवं चिन्तन (अर्थात् न्यायावयव syllogism) तथा उसके सहकारी ही लाजिकविषय हैं।

"It is contended by some Logicians that the province of Logic is formal Reasoning and Thinking; by which they mean mainly the Syllogism, and what is subsidiary thereto"—(Bain's Logic) इस श्रेणी को नैयायिक मूर्त्त वस्तुद्वेषक समस्त विषय अर्थात् उन्नयन (Induction) कहते हैं। अधिकांश विद्वान लक्षण तथा व्याख्या एवं वर्गीकरण (classification) को प्रतिषेध कहते हैं। "They would exclude everything that refers to the matter, that is to say Induction and the greater part of Definition and classification"—(Bain's Logic, Deduction, p. 241)

2. "Logic embraces, as has been seen, the most fundamental and universal of all principles–consistency, Deduction and uniformity. It reposes upon nothing more fundamental than itself,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

न्याय तथा लाजिक का लक्षण-समन्वय :—लाजिक का लक्षण निर्दिष्ट करते समय पाश्चात्य नैयायिक जो कुछ कहते हैं, वह न्यायशब्द के व्युत्पत्तिलब्ध अर्थ में गर्भाभिव्यक्त रूप से सन्निहित है। 'नि' उपसर्ग पूर्वक 'ई' धातु के उत्तर में "घञ" प्रत्यय करने से न्यायपद सिद्ध हो जाता है।

"नीयते प्राप्यते विवक्षितार्थं सिद्धिरनेन इति न्यायः"

—(न्यायकुसुमांजलि टीका)

अर्थात् जिसके द्वारा विवक्षित अर्थ की सिद्धि होती है, जिसके द्वारा सत्य का आविष्कार होता है, जो सत्य का समीपवर्त्ती होने का करण है, जो अभ्रान्त ज्ञानार्जन का हेतु है, वह न्याय है। न्यायविद्या, न्यायशास्त्र, तर्कशास्त्र, आन्वीक्षिकी को शास्त्र में समान अर्थ में व्यवहृत किया है। न्यायसूत्र भाष्यकार पूज्यपाद वात्स्यायन मुनि कहते हैं :—

"प्रमाणैरर्थपरीक्षणं न्यायः प्रत्यक्षागमाश्रितमनुमानं सान्वीक्षा प्रत्यक्षागमाभ्यामीक्षितस्यान्वोक्षणमन्वोक्षा तया प्रवर्त्तत इत्यान्वीक्षिको न्यायविद्या न्यायशास्त्रम्"

अर्थात् प्रमाण के द्वारा अर्थ परीक्षण ही न्याय है। प्रत्यक्ष तथा आगम (आप्तोपदेश) रूप प्रमाणद्वयाश्रित अनुमान को प्रत्यक्ष तथा आगम के द्वारा इक्षित के अन्वीक्षण को 'अन्वीक्षा' कहते हैं। अन्वीक्षा के द्वारा प्रवर्त्तिता विद्या — आन्वीक्षिकी। विद्वान बेन के लाजिक का अध्ययन करने से विदित होता है कि लाजिक के लक्षण तथा प्रतिपाद्य विषय सम्बन्ध में पाश्चात्य नैयायिकों में चार प्रकार का मतभेद दृष्टिगोचर होता है। लाजिक (न्याय-तर्क) अन्वीक्षा अथवा अनुमान का, तर्क का (Reasoning का) शिल्प है। यह अन्वीक्षा अथवा अनुमान एवं तर्क का विज्ञान है। यह मनन अथवा चिन्तन की विधि का विज्ञान है। यह सत्यानुसंन्ध्यायिनी चित्तवृत्ति का कार्य विज्ञान है [1] विद्वान मिल कहते हैं लाजिक जब केवल

---

and it gives foundation to all other sciences. There can be no science without assuming all the data of Logic...............".

— (Bain's Logic, Part I, p. 26)

1. "Logic has been termed the Art of Reasoning and the Art and Science of Reasoning". प्रथम लक्षण आलड्रिक (Aldrich) का है, द्वितीय लक्षण ह्वेटली (Whately) का है।
"Logic has been described as the Science of the Laws of Thought; Logic is defined the Science of the operation of the under standing in the pursuit of truth" (वही पृ० 30–31)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनुमान तथ्यवृत्तिक है (As Logic deals with truths of inference solely) तव प्रमाणाधीन चित्तवृत्ति का कार्य विज्ञान है।[1] पूज्यपाद भगवान वात्स्यायन कहते हैं :—

"तर्को न प्रमाणासंगृहीतो न प्रमाणन्तरम् प्रमाणामनुग्राहकस्तत्वज्ञानम् कल्प्यते"

अर्थात् तर्क, प्रमाण संगृहीत अथवा स्वयं प्रमाणान्तर नहीं है। यह प्रमाणगत सभी संशयों का निर्वारक है। यह तत्वज्ञानोत्पादक प्रमाण समूह का अनुग्राहक है। विद्वान मिल कहते हैं कि तर्कशास्त्र प्रमाण का अनुसन्धान नहीं करता, वह केवल प्रमाण के स्वभाव का विचार करता है। प्रमाण दोषयुक्त है अथवा निर्दोष, यह देखना ही तर्कशास्त्र का कार्य है। शव में क्या-क्या चिन्ह् होने चाहिये, तर्कशास्त्र यह सब चिकित्सक को नहीं बतलाता। मृतदेह में क्या-क्या लक्षण होने चाहिये, उसका दर्शन-परीक्षा के द्वारा निर्णय करना चिकित्सा विज्ञान का काम है। चिकित्सा विज्ञान दर्शन तथा परीक्षण के द्वारा यह निर्णय करता है कि मृतक के क्या-क्या लक्षण होते हैं। चिकित्सा विज्ञान का उक्त कार्य (दर्शन तथा परीक्षण) यथायथ रूप से निष्पन्न हुआ है अथवा नहीं, चिकित्सक क्या उन सभी चिन्हों को लक्ष्य करने में समर्थ हुआ है अथवा नहीं, इसका विचार करना तर्कशास्त्र का काम है। तर्कशास्त्र विचारवर्त्त हैं। आप विचारकर्त्ता के समक्ष प्रमाण उपस्थित करें, विचारकर्त्ता आपके द्वारा प्रस्तुत किये गये प्रमाणों की निःसंदिग्धता अथवा संदिग्धता एवं सत्यासत्य का विचार करेगा। समस्त विज्ञान अपने-अपने विषय के समर्थनार्थ प्रमाण संग्रहीत करते हैं। तर्कशास्त्र के द्वारा उनके सत्यासत्य पर विचार किया जाता है।[2] इसी कारण तर्कशास्त्र विज्ञानों का विज्ञान, सर्वशास्त्र प्रदीप है। तर्कशास्त्र को सर्वशास्त्र का प्रदीप रूप (प्रदीप सर्वशास्त्राणाम्) तथा सर्वकर्म का उपाय (प्रदीप सर्वशास्त्राणामुपायः सर्वकर्मणाम्) मान कर, जिस विशद भाव से तर्कशास्त्र का रूप वर्णित है, पाश्चात्य

---

1. "Logic then, is the science of the operations of the understanding which are sub servient to the estimation of evidence, both the process itself of proceeding from known trnths to unknown, and all other intellectual operations in-so-for as auxillary to this"—(Mill's Logic, Vol I, p. 11)

2. "Logic is the common judge and arbiter of all particuler investigations. It does not undertake to find evidence, but to determine whether it has been found. Logic neither observes, nor invents, nor discovers; but Judges."—(वही, पृ. 9)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विद्वान विविध वाक्यों द्वारा वर्णित करने का प्रयत्न करने पर भी उतने विशद रूप से इसका वर्णन नहीं कर सके हैं। अतः शास्त्र ही स्वल्पतः सारतत्व को कह सकने में समर्थ है। आधुनिक पाश्चत्य नैयायिकगण के ग्रंथों को पढ़ने से यह ज्ञात होता है कि तर्कशास्त्र (Logic) क्या है ? इसका लक्षण एवं प्रतिपाद्य विषय क्या है। इस संदर्भ में जो ज्ञान मिला है, उसका सार यह है कि तर्कशास्त्र सत्यानुसंधान में प्रयुक्त मनोवृत्तिसमूह का कार्य विज्ञान है।

सत्य व्यवहित तथा अव्यवहित रूप से द्विविध है :—हमें क्षुधा लग रही है, इस घटना को हम अव्यवहित रूप से जान सकते हैं। इस सत्य को जानने के लिये हमें अन्य की सहायता नहीं चाहिये। किसी पूर्व घटना से तुलना करके इसका अनुमान करना पड़ता। हमारा अन्तर्बोध ही इस सत्य का प्रमाण है। अतः सिद्ध सत्य-समूह तर्कशास्त्र का विषय नहीं हो सकता। व्यवहित सत्यनिचय ही तर्कशास्त्र का विषय ("Subject) है। जिस सत्य को पूर्व सत्य से (पहले जाने हुये सत्य की तुलना से) अनुमान करके स्वीकार करना होता है, जो सत्य अन्य प्रमाण के उपर निर्भर करता है, वही व्यवहित सत्य है।[1]

तर्कशास्त्र किस तरह से संशयनिरसन करने में समर्थ है ? तर्कशास्त्र का प्रामाण्य क्या है ?—हम जानते हैं कि तर्कशास्त्र प्रमाण का विज्ञान है। यहाँ यह जिज्ञासा है कि तर्कशास्त्र किस तरह से प्रमाणगत संशयों को दूर करता है ? तर्कशास्त्र का प्रामाण्य क्या है ? जो शास्त्र अन्य शास्त्रों का प्रदीप है, जो विज्ञानों का विज्ञान (Scientia Scientiarum) है उसकी उत्पत्ति कैसे होती है ? पाश्चात्य विद्वानों से जिज्ञासा करने पर इन प्रश्नों का जो उत्तर मिला है उसे स्थानान्तर में

1. "Truths are known to us in two ways; some are known directly, and of themselves, some through the medium of other truths. The former are the subject of intution, or cosciousness; the latter, of Inference. The truths known by intution are the original premises from which all others are inferred.........What-ever is known to us by consciousness, is known beyond possibility of question... .....No Science is required for the purpose of establishing such Truths; no rules of art can render our knowledge of them more certain than it is in itself. There is no logic for this portion of our knowledge"

—(Mill's Logic, vol I, p. 6)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अंकित किया जायेगा। प्रकृति के इन्द्रियग्राह्य रूप का निरीक्षण करने से विवित होता है कि जगत नियत परिवर्तन युक्त है। परिवर्त्तन (परिणाम) ही जगत् का यथार्थ रूप है। प्रत्यक्षादि प्रमाण के द्वारा अकस्मात् अथवा निष्कारण कोई भी कार्य संघटित नहीं हो सकता। प्रत्येक परिवर्तन तथा परिणाम किसी एक कारण के अधीन रहता है। प्रत्येक परिवर्तन अथवा परिणाम का कारण है। समस्त कार्य निर्दिष्ट प्रमाणधीन है। यह भी विदित हो सका है कि जगत् चक्रावर्त्त में आवर्त्तित हो सकता है। विश्व का परिणाम चक्रणाभिक्रम में प्रवाहित होता रहता है।

प्रत्यक्षवाद के समर्थक अथवा उसे प्राणदातृरूपेण पूजन करने वाले आगस्ट कामत[1] कहते हैं "इन्द्रियगम्य अथवा गोचर वस्तु के अतिरिक्त हमें किसी अन्य वस्तु का ज्ञान नहीं है और हमारा यह गोचर सम्वन्धित ज्ञान आपेक्षिक है। सम्वन्धात्मक है। यह अनन्य सम्वन्ध नहीं है। किसी कार्य का मूलतत्व अथवा उसकी उत्पत्ति की वास्तविक पद्धति को हम जान नहीं सकते। हम केवल पारम्पर्य अथवा सादृश्य के द्वारा उसके कार्यान्तिर के साथ के सम्बन्ध को जानते हैं। इस पारम्पर्य और सादृश्य का सम्वन्ध सदा स्थिर है। समान घटना में भी इसका रूप सतत समान है। जो सतत अथवा स्थिर साम्यभाव समूह दृग्गोचर घटनापुंज को परस्पर शृंखलित करता है और जिस सतत अथवा स्थिर अनुक्रम के द्वारा इनका पौर्वापर्य अथवा कार्यकारण भाव सम्बद्ध होता है, वही दृग्गोचर घटनापुंज का नियामक है।[2]

---

1. विद्वान मिल कहते हैं कि आगस्ट कामत का प्रत्यक्षवाद अपूर्वकल्पित (जो पहले कल्पित नहीं हैं) पदार्थ नहीं है। कामत इस मत के आदि प्रवर्त्तक अथवा कल्पक नहीं हैं। इनका प्रत्यक्षवाद ह्यूम (Hume) के प्रत्यक्षवाद का ही एक अंश है। कामत भी अपने को इस मत का प्रवर्त्तक नहीं मानते—"Mr. Comte claims no orginality for this conception of human knewledge. He avows that it has been virtually acted on from the earliest period by all who have made any real contribtion to science .. ...That is the only part of Hume's doctrine which was contested by his great adversory Kant..." (Auguste Comte and Positivism, by Mill, P 6–8) मेरा विश्वास है कि कोई भी मत अपूर्वकल्पित नहीं है। सभी मतवाद प्रवाहरूप से नित्य एवं पूर्वकल्पित हैं।

2. "The fundamental doctrine of a true philosophy, according to M. Comte and the character by which he defines Positive Philosophy, is the following—We have no knowledge of any-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पाश्चात्य विद्वान् काण्ट (Kant) का चिन्तनस्रोत और भी दूरतर प्रदेश में प्रवाहित हो चुका है। पारम्पर्य (क्रम) एवं यौगपद्य का सातत्य भी अपरिच्छिन्न पूर्ण आधार के क्रोड़ में अवस्थान करता है। किसी अपरिच्छिन्न आधार द्वारा आधारित न होने पर उसकी विद्यमानता ही नहीं रह सकती। उसका अस्तित्व ही नहीं रह सकता। यह विद्वान् काण्ट की उपलब्धि है।[1] विचारशीम विद्वान् स्पेन्सर कहते हैं किं प्रत्येक अनुभव, प्रत्येक भावना अस्थिर है। चंचल है। जव यह अस्थिर अनुभव भावनामय कृत्स्न जीवन भी अनित्य एवं क्षण विध्वंसी है, जिस पदार्थ समूह में जीवन अतिवाहित होता है, वह भी अपेक्षाकृत् अल्प चंचल है, जब प्रत्येक व्यक्तिगत अस्तित्व से परिवर्त्तित होते रहते हैं, तव परिणामी भावसमूह रूप पश्चान्निभृत्, अप्रत्यक्ष सत्ता का कोई अपरिणामी अथवा स्थिर पदार्थ, स्थिर भाव अवश्य है।[2]

---

thing but phenomena; and our knowledge of Phenomena is relative, not absolute. We know not the essence, nor the real mode of production of any faet, but only its relations to other facts in the way of succession or of simititude. The rela tions are constant, that is, always the same in the same circumstancs. The constant resemblances which link phenomena together and the constant sequences which unite them as antecenent and consequent, are termed their laws"

—(Auguste Comte and Positivism, By Mill, P. 6)

1. "Unless thought supplied this persistent permanent baekground, it would be impossible for us to realize the relations in time known as succession and simultanity."

(Kant, by, Wallace, p. 175)

2. Every feeling and thought being but transitory an entire life made up of such feelings and thoughts being also but transitory nay the objects amid which life is passed, through less transitory being severally in course of losing their individualities, quickly or slowly; we learn that the one thing permanent is the unknowable reality hidden under all these changing shapes"

(The Principles of Psychology, vol II, p. 503)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पाश्चात्यों को प्रकृति के इन्द्रियग्राह्य स्थूल स्वरूपावलोकन से जो कुछ ज्ञात हो सका है, वह यहाँ घनीभूत रूप में सन्निवेशित किया जा चुका। जगत् परिवर्त्तनात्मक है, परिवर्त्तन (change) आकस्मिक नहीं है। कार्यमात्र का कारण रहता है। अनिर्देश्य शक्ति ही समस्त कार्य का कारण है। (यहाँ कारण का तात्पर्य चरम कारण नहीं है।) इन्द्रिय ग्राह्य पारम्पर्य और सहवर्त्तन (Sequence and Co-Existence) को ज्ञान का उपादान कहा गया है। अव्यवहित पूर्ववर्त्ती घटना कारण है, परवर्ती घटना ही कार्य है। किसी भी पदार्थ के स्वरूप को जानने के लिये यह स्थिर करना आवश्यक है कि वह किस पदार्थ से विसदृश है, वह क्या नहीं है, किससे प्रतिकूल अथवा अनुकूल सम्बन्ध युक्त है। इन सबका स्मरण रखते हुये तर्कशास्त्र का अनुशीलन करने से, उसका स्वरूप ज्ञानगोचर हो जाता है।

विद्वान् बेन कहते हैं कि परिवर्त्तन के विना किसी ज्ञान की उत्पत्ति नहीं होती। परिवर्त्तन ही ज्ञानोत्पत्ति का हेतु है। ज्ञान भी सर्वदा पदार्थ द्वयात्मक अथवा द्वैतरूप होता है। अर्थात् इसमें साधर्म्य-वैधर्म्य का विचार, सजातीय-विजातीय[1] का विवेचन आवश्यक है। साधर्म्य-वैधर्म्य विचार का समीकरण (Identification) तथा सजातीय-विजातीय का विवेचन (Discrimination) ही ज्ञान का स्वरूप है।[2]

1. "In order to make us feel, there must be a change of impression, whence all feeling is two sided. This is the law of Discrimination or Relativity."

"As regards knowledge, there must likewise be a transition, or change, and the art of knowing includes always two things"

—(Bain's Logic, Part I, p. 23)

"Our knowledge of a fact is the discrimination of it from differing facts and the Agreement or identification of it with agreeing facts"—

"The only other element in knowledge is the retentive power of the mind or memory, which is implied in these two powers."

—(वही पृ० ४)

2. विद्वान् स्पेन्सर कहते हैं कि परिवर्त्तन उपलब्धि का मूल उपादान है। आदिकारण है। प्रतिबोधवान होने के लिये, कुछ उपलब्धि करने के लिये, विचार करना पड़ता है। चिन्तन व्यापार चित्त संस्कार अथवा भावना के साथ वर्त्तमान चित्त-राग (अनुभव) का संग्रहण, सन्धान, संयोजन के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यह हमें विदित है कि इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष के कारण जिन क्रियासमूह को हम प्रत्यक्ष करते हैं, उसकी क्रियानुभूति अथवा उपराग हमारे चित्त में संलग्न रहता है। चित्त की इस शक्ति को धृति अथवा धारणाशक्ति कहते हैं। (The power of retention)। विवेचन, सम्मेलन अथवा समीकरण एवं संन्धारण (Discrimination, Agreement, or identification) ही उत्पत्तिशील ज्ञान के त्रिविध कारण हैं। विवेक शक्ति (The power of discrimination), समीकरण शक्ति तथा धृतिशक्ति (The power of retention) रूप त्रिविधशक्ति से हमारा चित्त संयुक्त रहता है। इसी कारण से विज्ञान आविष्कृत है। प्रत्येक प्रत्यक्ष व्यापार की निष्पत्ति में हमारी विवेकशक्ति प्रयुक्त होती है। अतीत संवेदन (अनुभव) व्यावर्त्तित अथवा विवेचित न हो सकने पर वर्त्तमान संवेदन अथवा अनुभव, हमें लक्ष्यीभूत नहीं हो सकता। चित्त की एकावस्था से अवस्थान्तर की प्राप्ति अथवा परिवर्त्तन को वृत्यधीन ज्ञान (Consciousness would almost seem to consist in the break between one state of mind and the next) कहते हैं। चित्त सदा विवेचन प्रक्रिया में निरत रहता है। वह सदा अतीत अनुभूति से वर्त्तमान अनुभूति को पृथक् करता है, किन्तु यदि यह विवेचन ही चित्त का एकमात्र धर्म होता, उस स्थिति में विज्ञानोत्पत्ति नहीं हो सकती थीं। उस अवस्था में मानव भी पशु आदि जीवों से किसी भी अंश में विशिष्ट नही होता। ऐसी परिस्थिति में मानव को अनागत अथवा भविष्यदर्शन (prevision) नहीं हो सकता था। एक प्रकार की अनुभूति की अन्यरूप अनुभूति से विवेचना करने से निषेधात्मक अथवा अभावात्मक ज्ञान की ही उत्पत्ति होती है। "यह इससे भिन्न है" "यह—यह नहीं है" विवेचना अथवा पृथक्करण के द्वारा हम केवल यही जानने में समर्थ होते हैं। इस प्रकार का प्रत्यक्ष अनुमानिक ज्ञान का उपजीवक नहीं है। यह ज्ञान यह बतलाने में असमर्थ है कि क्या होगा। शुद्ध विवेकशक्ति से युक्त चित्त में प्रत्येक संवेदन अनन्य सम्बन्धरूप से अवस्थान करता है। संवेदन समूह को निःश्रेयणी (सिढ़ी) के समान सम्बद्ध करने वाला कोई भी पदार्थ शुद्धविवेक शक्ति युक्त चित्त में विद्यमान नहीं रहता। ऐसी कोई भी निःश्रेयणी (जो अतीत को वर्त्तमान के साथ सम्बद्ध करे) हिताहित (हित-अहित) का विवेक करने में सक्षम लोकालोकदर्शी

इसके लिये आन्तर परिवर्त्तन के अधीन होना पड़ता है। अतः परिवर्त्तन के बिना प्रतिबोधवान होना संभव नहीं होता। इसके अभाव में कुछ भी उपलब्ध नहीं होता। "To be Conscious is to think, to think is to put together impressions and ideas, and to do this is to be the subject of internal changes"

—(Principles of Psychology, Vol II, p. 291)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मानव के लिए अत्यन्त प्रयोजनीय है। जिस शक्ति के द्वारा मानव भिन्न-भिन्न भाव में उपस्थित संवेदनसमूह का समीकरण करने में सक्षम होता है, जाति निर्वाचन में सक्षम होता है, उसका नाम है समीकरण अथवा सम्मेलनशक्ति[1]। शास्त्र का कथन है कि अनुवृत्त बुद्धि सामान्य का तथा विवेक बुद्धि विशेष का लक्षण है।[2]

अनुवृत्ति एवं व्यावृत्ति न्याय (Laws of Identity and Difference):— सर्वप्रकार की बुद्धि अथवा समस्त विज्ञान (Science) के मूल में चित्त का विवेक एवं समीकरण धर्म अवस्था व्यंजक होकर अनुवृत्ति एवं व्यावृत्ति के रूप में प्रतिष्ठित है।[3] साधर्म एवं वैधर्म विचार के अभाव में विशेष ज्ञान की उपलब्धि नहीं हो सकती। उपलब्धि (ज्ञान) के सारभूत उक्त न्यायद्वय को साधारणतः अन्वयी न्याय (The law of idintity), व्यतिरेकी न्याय (The law of contradiction) तथा अन्वय व्यतिरेकी किंवा द्वैतन्याय (The law of Duality) की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। किसी एक पदार्थ की अनुभूति का तत्वचिन्तन करने पर अनुवृत्ति व्यावृत्ति न्याय (Laws of Inentity and difference) का स्वरूप हृदयंगम हो जाता है। इस प्रकार की अनुभूति को हम दृष्टान्त रूप से ग्रहण करते हैं। हम प्रोज्वलित अग्निकुण्ड के पास जाने पर, ज्वर से आक्रान्त होने पर, अथवा प्रखर तप्त दिवाकर के सम्मुख खड़े होने पर यह उपलब्धि करते हैं कि ताप क्या है? तापोत्तेजन का संचरण संज्ञावाही स्नायु के द्वारा मस्तिष्क में संचारित होते ही हमारे अन्दर एक प्रकार का परिवर्त्तन संघटित होता है। चित्त की तात्कालिक अवस्था अन्य प्रकार की हो जाती है। यह कहा जा चुका है कि कुछ भी उपलब्ध करने के लिये सर्वप्रथम चिन्तन होना आवश्यक है। अर्थात् पूर्व संस्कार समूह के साथ उपलभ्यमान संवेदनों का संयोजन करना पड़ता है। उससे तुलना करना पड़ता है। उपलब्धि के अनुसार चित्तनिष्ठ संस्कार समूह के साथ तापसंवेदन की तुलना करने से यह विदित हो जाता है कि यह शैत्यानुभूति का विरोधी है। यह ताप शैत्य व्यावृत्त पदार्थ है। उस तुलना से यह तथ्य सहज रूप से बुद्धिगोचर होने लगता है। इस तुलना से मात्र यह विदित होता है कि ताप शैत्यानुभूति का विरोधी पदार्थ है। यह विदित नहीं होता

---

1. (Principles of Science, by Jevons, p. 4.)
2. "अनुवृत्तबुद्धिः सामान्यस्य व्यावृत्तबुद्धिर्विशेषस्य"—(वैशेषिक उपस्कार)
3. "At thc base of all thought and science must lie the laws which expresses the very nature and conditions of the discriminating and identifiing powers of Mind".

—(The Principles of Science. p. 5.)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कि ताप क्या है ? यह जानने के लिए इसका समीकरण चित्त संलग्न तापसंस्कार के साथ करना होगा। जिस व्यक्ति ने जिस पदार्थ को इस जीवन में प्रत्यक्ष नहीं किया है, अथवा जो पदार्थ प्रत्यक्षीभूत होने योग्य नहीं है, उस पदार्थ का ज्ञान उसके अतिरिक्त, इतर पदार्थ व्यावृत्ति के द्वारा अर्जित हो जाता है। वह निखिल पदार्थ समूह से भिन्न रूप में परिलक्षित होता है।

क्या अनुवृत्ति एवं व्यावृत्ति न्याय (Laws of Identity and Difference) अथवा अन्वयी एवं व्यतिरेकी न्याय अथवा द्वैतन्याय सर्वजनसम्मत है ? कोई भी मत सर्वतोभावेन सर्वजनसम्मत नहीं हो सकता। पाश्चात्य जगत् में सर्वप्रथम व्यतिरेकी न्याय (Law of contradiction) को आरिस्टाटिल ने अपने ग्रंथ में सन्निहित किया था, तथापि वे अन्वयी न्याय की उपलब्धि को कारणान्तररूपेण स्वीकार नही कर सके थे। आरिस्टाटिल अपने क्षेत्र में (देश में) न्यायशास्त्र के प्रथम प्रवर्त्तक माने जाते हैं, तथापि सर विलियम जोन्स, स्टुअर्ट आदि पाश्चात्य विद्वानों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि वे साक्षात् परम्परा रूप से भारतवर्ष के ही शिष्य हैं।[1]

---

1. "In the course of the foregoing adversions on the syllogistic theory, I have proceeded on the supposition that the whole glory of the invention belongs to Aristotle, it is proper however, before dismissing the subject, to take some notice of the doubts which have been suggested upon this head, in consequence of the lights recently thrown on the remains of ancient science still existing in the East, Father Pons, a Jesuit missionary, was, I believe, the first person who communicated to the learned of Europe the very interesting fact, that the use of the Syllogism is, at this day, familiarly known to the Brahmins of India, but this information does not seem to have attracted much attention in England, till It was carroborated by the in disputable testimony of Sir Williams Jones, in his third discourse to the Asiatic Society, delivered in 1786 A D"

(Philosophy of the Human Mind, By Stewart's, P. 442)

सर विलियम जोन्स का ग्रंथ पढ़ने से विदित हो जाता है कि पैथागोरस (Pythagaras) तथा प्लेटो (Plato) ने भारतीय दर्शन से ही अपने द्वारा प्रचारित उत्कृष्ट दार्शनिक सिद्धान्तों को प्राप्त किया है। उक्त ग्रंथ में यह भी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जिसके द्वारा कोई पदार्थं लक्षित होता है, ज्ञात होता है, समान-असमान जातीय व्यवच्छिन्नता होती है, उसे लक्षण कहते हैं। पूज्यपाद उद्योतकराचार्य कहते हैं :—

"सर्व्वं हि लक्षणमितरेतरपदार्थव्यवच्छेदकम्"—(न्यायवार्त्तिक)

अर्थात् सकल लक्षण, समस्त लक्षण, इतरेतर पदार्थं व्यवच्छेदक हैं। इसके द्वारा यह ज्ञात होता है कि "लक्षण" केवल—व्यतिरेकी हेतु है। विचार करने से प्रतीत होता है कि लक्षण को केवल व्यतिरेकी हेतु ही कहना समीचीन है। भगवान् कणाद कहते हैं कि साधर्म्यं विचार के द्वारा तत्वज्ञान प्राप्त होता है। अतः अन्वयी न्याय (Law of Identity) शास्त्रसम्मत है। अब यह जिज्ञासा है कि इस न्याय का स्वरूप क्या है ? विद्वान् जेवन्स कहते हैं "Whatever is, is" अर्थात् समस्त

अंकित हैं कि ब्राह्मणों ने अनुत्संधित्सु ग्रीकों को न्याय का उपदेश दिया था। आरिस्टाटिल के न्यायशास्त्र की मूल भित्ति भारतीय न्यायशास्त्र ही है।

"A tradition which prevailed, according to the well-informed auther of the Dabistan, in the Punjab, and in several Persian Provinces, that among other Indian curiosities which Callisthenes transmitted to his uncle, was a technical system of Logic which the Brahmins had communicated to the inquisitive greek, and which the Mohommedon writer supposes to have been the ground work of the famous Aristotelion method "If this be true", coutinues Sir W. Jones, and none will dispute the Justness of his remark "It is one of the most interesting facts that I have met with in Asia"—(Eleventh Discourse, delivered in 1794 A. D, वही, पृ. 443)

सत्यानुत्संधित्सु सर विलियम जोन्स ने अतीव प्रयोजनीय संवाद दिया है, किन्तु शिक्षित भारतवासी कहते हैं कि सर जोन्स की गवेषणा प्रशंसनीय है, तथापि इससे समाज का कोई भी उपकार नहीं हो सकता। "स्वधर्म को छोड़कर इन्द्रिय दासत्व में रत रहना, और जब चाहे मन बहलाने के लिये शास्त्र निन्दा करना! अर्थात् यहाँ के प्राचीन आचार के प्रति कुत्सा, सामाजिक उन्नति के लिये शब्द तथा वाक्य का व्ययात्मक प्रयोग! यह समझना कि अंग्रेजों ने कितनी उन्नति किया, बिना अंग्रेज बने उन्नति संभव नहीं है।" अतः इस प्रकार का अभिमत रखने से क्या सामाजिक उन्नति हो सकेगी ?

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पदार्थ सर्वदा स्वभावसिद्ध होते हैं। 'गो' गवात्मा में सिद्ध है, 'अश्व' अश्वात्मा में सिद्ध है। (A thing at any moment is perfectly identical with itself) एक पदार्थ तादात्म्य सम्बन्ध में सर्वदा अभिन्न (निर्विशेष) होता है। विद्वान कान्ट(kant) अन्वयी न्याय (Law of Identity) को सारभूत प्रथम न्याय (Absolutely First principle) कहते हैं। अन्वयी न्याय का स्वरूप प्रदर्शन कराते हुये कान्ट कहते हैं कि "Whatever is, is, as the principle of affarmative breeths and whatever is not, 'is not', as the principle of negative truths"[1] अर्थात् जो सत् है, वह सत् है। जो असत् है, वह असत् है। भगवान्-गौतम सर्वशून्यतावाद का निराकरण करते हुये कहते हैं "न स्वभावसिद्धेर्भावानाम्" (न्यायसूत्र) समस्त भावजात वस्तुत: अभाव है। क्योंकि गो अपने से (अतिरिक्त) इतर अश्व इत्यादि से असत् है। गो अनश्व है। अश्व भी गवात्मा से इतर है। इस कारण गो, अश्व इत्यादि भावपदार्थ अन्योन्याभाव के कारण असत् प्रत्ययस्थ प्रतिषेध के भावशब्द के साथ सामान्याधिकरण्य के कारण "अभाव" हैं। वास्त्यायन मनि कहते हैं "नहीं ! ऐसा नहीं होता, तुम्हारी प्रतिज्ञा तथा हेतु, व्याघात दोष दूषित (Contradictory) है, अत: तुम्हारी युक्ति अपसिद्धान्त होने के कारण अग्राह्य है।" "सर्वमभाव:" सर्व शब्द 'अनेक की अशेषता' के अर्थ का तथा अभाव शब्द भाव प्रतिषेध के अर्थ का वाचक है। पहला सोपाख्य है, दूसरा निरुपाख्य है। उद्देश्य (Subject) सोपाख्य है। विधेय (Predicate) निरुपाख्य कहा जाता है। ऐसा क्यों है ?

भगवान गौतम "न स्वभावसिद्धेर्भावानाम्" इस सूत्र के द्वारा समझते हैं कि समस्त भाव अपने भाव हैं। स्वीयधर्म सिद्ध हैं (What is, is)। गो शब्द का उच्चारण करने पर जातिविशिष्ट द्रव्य गृहीत होता है। अभाव गृहीत नहीं होता। यदि सभी तुच्छ अथवा अभाव होता, उस स्थिति में "गो" शब्द का उच्चारण होने से अभाव की ही प्रतीति होती। उस अवस्था में गो शब्द अभाव को समझाने के लिए प्रयुक्त होता। अश्वात्मा में गो असत् है, यदि यह कहने से सभी का अभाव होता, उस स्थिति में यह क्यों नहीं कहते कि गवात्मा में गो असत् है ? गवात्मा में गो असत् नहीं हो मकती। गवात्मा में गो सत् है। अत: सर्वभाव पदार्थ स्वभावत: सिद्ध है। 'सर्व अभाव' का सिद्धान्त अपसिद्धान्त (त्रुटिपूर्ण सिद्धान्त) है।

'न स्वभावसिद्धिरापेक्षिकत्वात्'—(न्यायसूत्र)

यह आशंकासूत्र है। सूत्र का तात्पर्य यह है कि द्रव्य की स्वभावसिद्धि असंभव है। सभी द्रव्य आपेक्षिक होते हैं। अन्यपेक्षाकृत (Relative) हैं। दीर्घ की अपेक्षा

---

1. History of Philosophy, Uberweg, vol II, p. 144)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

से ह्रस्व की सिद्धि होती है। अतः कोई भी द्रव्य अपनी आत्मा में अवस्थित नहीं है। कोई भी स्वाभावसिद्ध नहीं है।

"व्याहतत्वादयुक्तम्"—(न्यायसूत्र)

अर्थात् 'सभी द्रव्य अपेक्षाकृत हैं, अतः कोई भी अपनी आत्मा में अवस्थित नहीं है। कोई भी द्रव्य स्वभावसिद्ध नहीं है। हम जिस युक्ति के द्वारा अपनी इस प्रतिज्ञा की स्थापना करते हैं, वह व्याघात दोषयुक्त है, अतः वह अयुक्त है। "ह्रस्व दीर्घापेक्षाकृत" यहाँ यह जिज्ञास्य है कि दीर्घ का दीर्घत्व स्वभावसिद्ध है अथवा आपेक्षिक है? यदि दीर्घ का दीर्घत्व ह्रस्व की अपेक्षा से है, तुलना से है, उस स्थिति में द्रव्य का स्वभावसिद्धत्व प्रकारान्तर से स्वीकार करना ही होगा। ह्रस्व न रहने पर दीर्घत्व का ज्ञान नहीं रहता, दीर्घ के अभाव में ह्रस्व का अस्तित्वभान नहीं हो सकता। इस कारण दोनों अन्योन्याश्रयी हैं, दोनों ज्ञात इतरेतरापेक्ष हैं। इतरेतराश्रय पदार्थद्वय में एक का अभाव होने से दूसरे का अभाव अवश्यम्भावी हो जाता है। अतः एक के अभाव से दोनों का अभाव स्वतःसिद्ध है। ऐसी स्थिति में अपेक्षा व्यवस्था कैसे उत्पन्न होगी? यदि भाव स्वभावसिद्ध नहीं है और आपेक्षिक है (यदि यह सिद्धान्त सत्य है), उस स्थिति में समान वस्तुद्वय (समवस्तुद्वय) किंवा परिमण्डलद्वय में (परिमाण विशिष्ट अणु को परिमण्डल कहते हैं) दीर्घत्व—ह्रस्वत्व ज्ञान क्यों नहीं होगा?

"किमपेक्षासामर्थ्यमिति चेत् द्वयोर्ग्रहणेऽतिशयग्रहणोपपत्तिः। द्वे द्रव्ये पश्यन्नेकत्र विद्यमानमतिशयं गृह्णोति, तद्दीर्घमिति व्यवस्यति, यच्च हीनं गृह्णाति तद्-ह्रस्वमिति व्यवस्यतीति, एतच्चापेक्षासामर्थ्य—मिति।"—(वात्स्यायन भाष्य)

यदि यह पूछें, उस स्थिति में अपेक्षा सामर्थ्य का स्वरूप क्या है? पूज्यपाद वात्स्यायन मुनि इस प्रकार की जिज्ञासा चरितार्थ करने के उद्देश्य से कहते हैं कि जिसके द्वारा दो वस्तुओं में विद्यमान धर्मगत् न्यूनाधिक्य उत्पन्न होता है, वही अपेक्षा सामर्थ्य है। शैत्य ताप का अथवा ताप शैत्य का अभाव (अभाव कहने से साधारणतः जो अर्थ भासित होता है) नहीं है। अतिमात्र शैत्य तथा समधिक ताप का क्रियाकारित्व समान है।[1]

(1) आलोक तथा अन्धकार (Light and Darkness) परस्पर विरोधी हैं। वास्तव में अन्यान्य प्रतिषेधी पदार्थद्वय नहीं हैं। वैज्ञानिक Tyndell कहते हैं कि ईथर की निःस्पन्दनावस्था 'अन्धकार' है। इसकी सस्पन्दनावस्था 'आलोक' है। ईथर प्रकृतरूप से कभी भी एकबारगी निःस्पन्द नहीं होता। उसके स्पन्दन में ह्रासवृद्धि होती रहती है। जब ईथर का स्पन्दन ह्रस्व होता है, ह्रसित

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भगवान कणाद कहते हैं :
"सामान्यं विशेष इति बुद्ध्यपेक्षम्" —(वैशेषिक दर्शन, १।२।३)

होता है, तब हम आलोक को 'ताप' कहते हैं। विश्वाकाश में प्रतिक्षण आलोक एवं तापाख्य आन्दोलायित्त गति का परिस्पन्दन परस्पर संमिश्रित होता रहता है। "Darkness might then be defined as ether at rest; light as ether in motion. But in reality the ether is never at rest, far in the absence of light—waves we have heat-waves always speeding through it. In the spaces of the universe both classes of undulations incessantly commingle."

—(Fragment of Science Vol I, P. 34]

तमः एवं प्रकाश (Darkness and Light) परस्परतः अत्यन्तविरुद्ध पदार्थद्वय नहीं हैं। तमः अभाव है और प्रकाश भाव है। जो इस प्रकार का सिद्धान्त मानते हैं, उनका सिद्धान्त सत् नहीं है। तमः भाव पदार्थ है। वेदान्ताचार्यगण ने भी तमः को भावपदार्थ माना है।

"युष्मदस्मत्प्रत्ययगोचरयोर्विषयविषयिणोस्तमःप्रकाशवद्विरुद्धस्वभावयोरितरेतरभावानुपत्तौ सिद्धायां तद्धर्मणामपि सुतरामितरेतरभावानुपपत्तिरित्यतोऽस्मत् प्रत्ययगोचरे विषयिणी चिदात्मके युष्मत्प्रत्ययगोचरस्य विषयस्य तद्धर्माणां चाध्यासः" इस शारीरक भाष्य की टीका करते समय पूज्यपाद पद्मपाद कहते हैं "कोऽयं विरोधः कीदृशो वा इतरेतरभावोऽभिप्रेतो यस्मानुपपत्तेस्तमः प्रकाशवदिति निदर्शनम्। यदि तावत् सहानवस्थानलक्षणो विरोधः ततः प्रकाशभावे तमसो भावानुपपत्तिः। तदसत्। दृश्यते हि मंत्रप्रदीपे वेश्मन्यस्पष्टं रूपदर्शनमितरत्र च स्पष्टम्। तेन जायते मन्दप्रदीपे वेश्मनि तमसोऽपियदनुवृत्तिरिति। तथा छायायामपि........सूचयति" —(पन्चपादिका]

विषय तथा विषयी (Object and Subject) परस्पर विरुद्ध-परस्पर भिन्न हैं, लोगों के मन में यह धारणा है। जैसे तमः एवं प्रकाश परस्पर विरुद्ध है, उसी प्रकार विषय एवं विषयी भी विरुद्ध हैं। वास्तव में तमः एवं प्रकाश परस्पर विरुद्ध नहीं होता। प्रकाश का अल्पत्व है तमः। यह प्रकाश का अभाव नहीं है। इसी प्रकार छाया तथा आतप, शीत एवं उष्ण इत्यादि भी परस्परतः सम्पूर्ण विरोधी नहीं होते।

जो पाश्चात्य दर्शन का अध्यन करते हैं "उन्हे विद्वान हेगेल (Hegel), शेली (Schelling), फिकेट (Fichete) कान्ट (Kant) तथा बर्कले

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(Berkeley) प्रभृति दार्शनिकों का मत अवश्य विदित होगा। यह कहा जा चुका कि पृथ्वी में जितने भी मत प्रचलित हैं, उन सब का उत्पत्तिस्थान भारतवर्ष है। वेद का अर्थवाद सभी मतों का केन्द्र है। यदि विश्वजननी मुझे यथाप्रतिज्ञात दर्शन शीर्षक प्रस्ताव लिखने की शक्ति प्रदान करें, उस अवस्था में "पृथ्वी में जितने भी मत प्रचलित हैं उन सबका उत्पत्तिस्थान भारतवर्ष है, वेद का अर्थवाद ही इन सब का उन्मेष केन्द्र है", इसे प्रमाणित कर सकूंगा। विद्वान यूवेवर्ग कहते हैं कि हेगेल, शेलि के जातिवाद (The principles of Idintity) की फिकेट ने (परिपुष्ट अथवा उपचित तार्किक रीति के अणुसार सोपपत्तिक) व्याख्या करते हुये अपने सर्वविज्ञानवाद की सृष्टि किया है। (Hegel developing the principle of identity postulated by Schelling, and subjecting it to the forms of demostration according to 'Fichte's method, of dialectical development, Created the system of absolute idealism"—(History of Philosophy, Vol. II P. 231) हेगेल के विज्ञानवाद में दृष्टिगोचर होने वाले जागतिक साद्यन्त पदार्थ समूह हमारी चित्तवृत्ति में स्थित पदार्थसमूह का मायिक विजृम्भण नहीं है (विधायी विज्ञानवाद का यही सिद्धान्त है) परन्तु ये स्वभावतः मौयिक हैं। वास्तव में असत् हैं। इनका अस्तित्व नहीं है। उन सब की मूलभित्ति विश्वव्यापक ऐश्वर विज्ञान है।

"According to the system finite things are not (as in the system of subjective idealism) simply phenomena for us, existing only in our consciousness, but are phenomena perse by their very nature, i. e things having the ground of their being not in themselves, but in the universal divine Idea."—(History of Philosophy, Vol II. P. 231 by Uberweg) सर्वशून्यवादी बौद्धगण की स्वमति प्रतिष्ठापक युक्ति का स्मरण करने से, विद्वान हेगेल की निम्नोद्धृत पंक्तियों का तत्वचिन्तन सम्यकरूपेण किया जा संकता है।

"Thought is always distinction determination, the marking off of one thing from another, and it is characteristic of Aristotle, the great definer, that he should single out this aspect of it. But thought is not only distinction, it is at the same time, relation. If it marks off one things from another, it at the same

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

time, connects one things with another. Nor can either of these function of thought be seperated from the other, as, Aristotle himself said, the knowledge of opposites in one. A thing which has nothing to distinguish it is unthinkable is a thing which is so separated from all other things as to have no community with them .....Every finite thing is itself, and no Other. True, Hegel would answer, but with a coveat. Every finite thing, by the fact, that it is finite, has on esential relation to that which limits it and thus it contains the principle of its destruction in itself. If is therefore, in this sense, a self contradictory existence, which at once is itself and its other, itself and not itself. It is at war with itself and its very life-process in the process of its dissolution. In an absolute sense, it cannot be said to be, any more than not to be"

—(Hegel, By Edward Caird, P. 134-136)

हेगेल यह प्रतिपादन करते हैं कि पदार्थ समूह स्वभाव विरोधी, स्वरूप प्रतिषेधी हैं। प्रतियोगी ज्ञान की सहकारिता के कारण स्वात्मप्रतिक्षेपी (Contradictory in itself] हैं। पदार्थ की मूलधातु है प्रतियोगिता। प्रतियोगिताद्वय का समवाय है पदार्थ तादात्म्य (Identity)।

"Everything is contradtictory in itself; contradiction forms its essence; its idintity consists in being the union of two conradtictories,......Existance is therefore identical with its negation"—(History of Philosophy, Vol II, By Liwies, Page 536) हेगेल के मतानुसार केवलभाव तथा केवल अभाव एक पदार्थ है। हेगेल के इस मत को सुनकर कोई यह न समझे कि केवलभाव तथा केवल अभाव मात्र पदार्थ है, अतः सत्ता नहीं है। ऐसा समझने से भ्रमोत्पादन ही होगा।

"But to conclude that there is not existance, would be false; for the abstract nothing (Nichts) is at the same time the abstract being"

—(वही, पृष्ठ 536)

तार्किक चूड़ामणि पूज्यपाद श्रीहर्ष स्वप्रणीत 'खण्डनखण्डखाद्य' नामक अपूर्व ग्रंथ में भाव तथा अभाव के विरोध-खण्डनार्थ जो कुछ कहते हैं, उससे केवल

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विज्ञानवादी हेंगेल के उद्धृत मतों से तुलनात्मक अध्ययन करना आवश्यक है। अद्वैतसिद्धि में भेद (Difference) का असिद्धि प्रदर्शन करना एक आवश्यक कर्त्तव्य है। वेदान्त अद्वैतमत के प्रतिष्ठापक हैं। अतः भेद की असिद्धि का प्रदर्शन करते हुये एकत्व स्थापन ही वेदान्त का कार्य है।

'-ननु कथं विगलितनिखिलभेदब्रह्मप्रतिपत्तिः प्रत्यक्षादिविरोधात् तथाहि प्रत्यक्षेण तावदिदमस्माद्भिन्नमिति नीलपीतादेर्भेदमध्यवस्यामः"

—(चित्सुखमुनिविरचित तत्वप्रदीपिका, द्वितीय परिच्छेद)

यह उससे भिन्न है। यह नील है, वह पीत है, यह प्रकाश है, वह तमः है, यह सुन्दर, वह असुन्दर, इस प्रकार की प्रत्यक्षसिद्धि बुद्धि का विलाप करके समस्त पदार्थों का अभिन्नरूपेण दर्शन करना, विगलित निखिलभेद ब्रह्मज्ञान का विकास करना, कैसे संभव हो सकता है? वेदान्त इसके उत्तर में कहते हैं कि अविद्याप्रसूत, अनादिकाल प्रवर्त्तित प्रत्यक्षसिद्ध इस भेदज्ञान का विकास करने के लिये ही हमारा जन्म हुआ है। यह अस्वीकृत है कि भेद प्रत्यक्षसिद्ध है, किन्तु यह जिज्ञासा है कि क्या प्रत्यक्ष से शुद्धभेद ही दृष्टिगोचर होता है? क्या प्रत्यक्ष केवल भेद का ही ग्राहक है? अथवा वस्तु को भी गोचर करता है। क्या प्रत्यक्ष वस्तु का ग्राहक है? यदि यह कहें कि प्रत्यक्ष वस्तु को भी गोचर करता है, तब यह जिज्ञासा पुनः होती है कि क्या पहले भेद, तत्पश्चात् वस्तुग्रहीत होती है? अथवा दोनों ही युगपद रूप से गृहीत होते हैं? 'पहले भेद तत्पश्चात् वस्तुगोचर होती है' यह नहीं कहा जा सकता क्योंकि धर्मप्रतियोगीरूप वस्तु-प्रतिपत्ति के बिना भेद का प्रत्यय नहीं होता। अतः भेदग्रहण के द्वारा वस्तुग्रह नहीं हो सकता, यह प्रमाणित तथ्य है। वस्तुग्रहण से विरत बुद्धि व्यापार के कारण वस्तुग्रह पुरःसर भेदप्रत्यक्ष भी सिद्ध नहीं हो सकता। वस्तुग्रह तथा भेदग्रह युगपत् रूप से होता है, यह पक्ष भी असाध्य है। धर्मी अथवा वस्तुप्रति-योगिज्ञान भेदप्रतिपत्ति का कारण है। धर्मी सन्निहित होने पर भी असन्निहित प्रतियोगिप्रतिपत्ति के विना भेद प्रतिपत्ति नहीं होती। यह वादी प्रतिवादी दोनों के द्वारा सम्मत है। अतएव कार्यकारण बुद्धि के यौगपद्य के कारण वस्तुग्रह एवं भेदग्रह युगपत् प्रत्यक्ष असाध्य होता है।—"अथ मतं कि प्रत्यक्षं भेदत्वेन...... भेदप्रतिपत्तिर्व्यतिरेकस्य वादिप्रतिवादिनोः सम्मतत्वादीति"—(चित्सुखमुनि विरचित तत्वप्रदीपिका)

यह कहा जा चुका है कि न्याय वैशेषिक मतानुसार भेद (अन्योन्याभाव) प्रत्यक्षग्राह्य तत्वान्तर है। चित्सुखाचार्य इसके द्वारा न्याय—वैशेषिक सम्मत

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

समान का भाव=सामान्य (तुल्यार्थता) समान किसे कहते हैं ? जो तद्धर्मवान होने पर भी ठीक उसी प्रकार का नहीं है। (यस्तद्धर्मवानपि न तद्भवति सोऽयं समानः)। 'विशेष' इससे विपरीत स्थिति को कहते हैं। यह सामान्य तथा विशेष (Identity and difference) बुद्ध्यपेक्ष है। बुद्धिलिंगक है। सामान्य विशेष को बुद्धि के ही माध्यम से लक्षित किया जाता है। अनुगत बुद्धि सामान्य का तथा विशेष बुद्धि विशेष का लक्षण है। पूज्यपाद वात्सायन मुनि 'समान प्रसवत्मिका जाति' इस गौतमोक्त सूत्र का भाष्य करते समय कहते हैं कि जो अर्थ अनेक का प्रत्ययानुवृत्तिनिमित्त है, वह सामान्य है। (योऽर्थोहनेकत्र प्रत्ययानुवृत्तिनिमित्तं तत्सामान्यम्)। वस्तुभूत निमित्त के विना कभी भी भिन्नपदार्थ समूह में अभिन्ना वृत्ति का उदय नहीं हो सकता। जिस निमित्त से हम एक वस्तु को अन्य एक वस्तु के समान समझते हैं, स्वीकार करते हैं, समान बुद्धि प्रसवात्मक वस्तुभूत उस निमित्त को सामान्य कहते हैं। भगवान गौतम के मतानुसार यह जाति है। अब यह ज्ञातव्य हैं कि सामन्य विशेष को महर्षि कणाद "बुद्ध्यपेक्ष" क्यों कहते हैं ? यह ज्ञातव्य है कि किस पदार्थ की उपलब्धि बुद्ध्यपेक्ष नहीं है ? सामान्य-विशेष को बुद्ध्यपेक्ष कहने से यह ज्ञात हो जाता है कि पदार्थ मात्र की उपलब्धि बुद्ध्यपेक्ष है, कारण यह है कि सामान्य एवं विशेष भी वास्तव में जागतिक पदार्थ है। विभिन्न धर्म अथवा गुणत्व के कारण एक वस्तु अन्य एक वस्तु के समान लक्षित होती हैं।

अर्थ क्रियाकारित्व के कारण जाति, सामान्य रूप से तथा व्यक्ति अथवा विशेष रूप से, द्विधा लक्षित होती है। व्यक्तभेद व्यक्ति ही जाति पदार्थ है। धर्म-

---

भेद के प्रत्यक्षग्राह्यत्व का खण्डन करते हैं। यहाँ यह स्मरणीय है कि भगवान गौतम प्रमाणसामान्य परीक्षा करने में प्रवृत्त होकर जिन तीन पूर्वपक्षसूत्र को अपने ग्रंथ में सन्निवेशित करते हैं, यहाँ पर चित्सुखमुनि द्वारा उद्धृत अतिरिक्तभेदखण्डन वचनसमूह में भी उन्हीं तीनों का आभास मिलता है।

इन सब तथ्यों के उल्लेख का क्या प्रयोजन है ? प्रथम प्रयोजन यह है कि भेदज्ञान अविद्या प्रसूत है। वह वस्तुतः सत्य नहीं है। यह ज़ान लेने से जड़-विज्ञान की महिमा गौण हो जाती है। द्वितीय प्रयोजन यह है कि विज्ञानवाद तथा अद्वैत ब्रह्मवाद, इन दोनों के साधर्म-वैधर्म की सूचना मिलती है। तृतीय प्रयोजन के अन्तर्गत् ऋषिगण में पारस्परिक मतभेद वास्तव में नहीं है। यह जान लेने पर जिस रीति से विचार करना होगा, उसका संकेत देना, चतुर्थ प्रयोजन है यह समझना कि चाहे कोई किसी भी मत का प्रकाश करे, शास्त्र में उसका पूर्ण विकास है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

धर्मीभाव परमार्थतः सत्य नहीं है। धर्म, धर्मी से परमार्थतः भिन्न नहीं है। भाव अथवा सत्ता एकाधिक नहीं है। उक्त है :—

"अर्थ क्रिया कारितया भिन्ना एवं हि व्यक्तः।
ता एव व्यक्तयस्त्यक्तभेदा जातिरुदाहृता।"

'भाव' अनुवृत्तिं (Identity) ही हेतु है। यह व्यावृत्ति हेतु नहीं है। एक भाव अथवा सत्ता ही परिच्छिन्न होकर द्रव्यादि नाम से अभिहित होती है। अनुवर्त्तमान एकभाव, व्यावर्त्तमान द्रव्यादि के द्वारा विशिष्ट तथा परिच्छिन्न होकर स्थिर रहता है। उक्त है :—

"भावोऽनुवृत्तिरेव हेतुत्वात् सामान्यमेव"—(वैशेषिक दर्शन १।२४)

एक भाव का जिन्होंने तत्वतः सन्दर्शन किया है, उन्हें समस्त भाव का तत्वतः संदर्शन हो जाता है। अतः सामान्य-विशेष बुद्ध्यपेक्ष है, व्यावहारिक बुद्धि विशेषणक है। श्रद्धास्पद चिन्तनशील विद्वान श्रीयुक्त चन्द्रकान्त तर्कालंकार वैशेषिक दर्शन का एक उपादेय भाष्य प्रणीत कर चुके हैं। हम "सामान्य विशेष इति बुद्धयपेक्षम्" इस सूत्र की व्याख्या के समय उक्त भाष्य का ही प्रधानतः अनुवर्त्तन कर रहे हैं। सूत्र की ऐसी व्याख्या उपस्कार अथवा नव्यनैयायिकों के अनुसार नहीं है।

"एका भावस्तत्वतो येन दृष्ट।
सर्वे भावास्तत्वेन दृष्टा इति॥"

विद्वान जेवन्स अन्वयी न्याय (The law of Idintity) की समालोचना करते समय जो कुछ कहते हैं, उसे विवेचित किया जा चुका। अब यह अध्ययन करना है कि वे व्यतिरेकी तथा द्वैतन्याय (The Law of Contradiction तथा The Law of Duality) का स्वरूप निर्दिष्ट करते समय क्या कहते हैं ?

इतरेतर विरोधी गुण समूह कभी भी एकीभूत नहीं होता। एक वस्तु विभिन्न देश एवं काल भेद से विभिन्न धर्म ग्रहण करती है। एक वस्तु एक देश में शुभ्र, अन्य देश में कृष्णवर्णा हो सकती है। वह एक समय में कठिन तथा अन्य काल में कोमल हो जाती है। इतने पर भी एक धर्म, युगपत् रूप से एक देश तथा एक ही समय में सदसत् नहीं हो सकता। अरस्तू इस न्याय को निखिल सिद्धान्त अथवा स्वतः सिद्ध तत्व का आदिभूत कहते हैं, यह अन्वर्थ हो गया। द्वैतन्याय ही अन्वयी न्याय, एवं व्यतिरेकी न्याय का पूर्णरूप है। समस्त जागतिक वस्तु समूह सप्रतियोगिक है। समस्त दृगगोचर वस्तु भाव एवं अभाव रूप पक्षद्वय की मध्यवर्त्ती है। यह द्वैतन्याय द्वारा प्रतिपन्न होता है। विद्यमानता एवं अविद्यमानता, भाव-अभाव, इनके मध्य में कोई भी अन्यपक्ष नहीं है, यह द्वैतन्याय के द्वारा प्रमाणित हो जाता है। किसी के

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सम्बन्ध में कुछ भी स्वीकार-अस्वीकारात्मक प्रवचन (Discourse) अथवा वाक्य का नाम प्रतिज्ञा है। (प्रतिज्ञा-Proposition) प्रतिज्ञा के इस लक्षण द्वारा यह प्रतिपन्न होता है कि भाव तथा अभाव रूप पक्षद्वय के मध्य में किसी भी अन्यपक्ष की सत्ता ही नहीं है। अन्वयी न्याय, व्यतिरेकी न्याय तथा अन्वयी व्यतिरेकी न्याय रूप इन त्रिविध न्याय को तीन स्वतंत्र न्याय नहीं कहा जा सकता। ये तीनों एक सत्य की ही विभिन्न आकृति रूप हैं। इनमें से प्रत्येक के द्वारा अन्य दो पूर्वकल्पित तथा विवक्षित होते हैं।[1] भगवान कणाद कहते हैं कि सामान्य तथा विशेष बुद्ध्यपेक्ष है। विद्वान जेवन्स का चिन्तनशील मस्तिष्क भी यथोक्त अन्वयी तथा व्यतिरेकी न्याय के सम्बन्ध में यह जिज्ञासा करता है कि क्या ये बौद्ध हैं अथवा वास्तविक हैं (Are

---

1. "The second law points out that Contradictory attributes can never be Joined together. The same object may vary in its different parts, here it may be black, and there white, at one time it may be hard and at anothor time Soft, but at the same time and place an attribute cannot be both present and absent. Aristotle truly described this law as the first of all axioms one of which we need not seek for any demonstration.

The third of these laws Completes the other two. It asserts that at every step there are two possible alternatives-Presence, or absence, affirmation or negation. Hence I propose to name this Law of Duality, for it gives to all the formulae of reasoning a dual charactor. It asserts also that between presence and absence, existence and Non-existence affirmation and negation, there is no third alternative. As Aristotle said, there can be no mean between opposite assortions. We must either affirm or deny. Hence, the inconvenient name by which it has been known–The Law of Excluded Middle. It may he allowed, that these laws are not three independent and distinct laws., they rather express three different aspects of the same truth and each Law doubtless pre-supposes and implies the other two"

(The Principles of Science P. 6-7)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

they Laws of Thought or Laws of Thing)। विद्वान जेवन्स कहते है जब विज्ञान मन की सामग्री है, जब यह अन्तःकरणाधिष्ठित है, तब इसे एक प्रकार का बौद्ध न्याय कहा जा सकता है, तथापि बाह्यजागतिक प्रत्यक्ष से भी इसकी यथार्थता प्रामाणीकृत हो जाती है।[1]

जिन त्रिविध मानसशक्ति से विज्ञानोत्पत्ति होती है, वह हमें अध्ययन द्वारा ज्ञात है। प्रत्येक ज्ञान, समीकरण, विवेचन एवं घृति रूप त्रिविध मानसशक्ति के द्वारा अर्जित है। अन्वयी न्याय तथा व्यतिरेकी न्याय तर्कशास्त्र (Logic) का तत्व है। इस स्थिति में यह निःसंदिग्ध है कि तर्कशास्त्र अन्य शास्त्रसमूह का प्रदीप है। हम शास्त्रों के दास हैं। अतः यहाँ संक्षेप में अपना मन्तव्य प्रस्तुत करना आवश्यक समझते हैं। पाश्चात्य विद्वान विज्ञान का जितना श्रेणीविभाग अंकित कर गये हैं, क्या वह ज्ञानार्जन रीति से विदित एक तत्व का देश एवं काल परिच्छिन्न भिन्न-भिन्न रूप नहीं है? प्रत्येक विज्ञान प्रत्यक्षादि प्रमाण के द्वारा अर्जित होता है। इसलिये क्या दर्शन एवं परीक्षण ही समस्त विज्ञानों का उत्पत्ति कारण नहीं है? संस्कृत न्यायशास्त्र प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान तथा शब्दरूप चतुर्धा प्रमाण को ज्ञानार्जन का साधन मानता है। अतः विचार करने से ज्ञात होगा कि जैसे मृत्तिका दण्ड चक्रादि तथा कुंभकरण रूप त्रिविध कारण समवाय से घटादि नानाविध मृण्मय पदार्थ का निर्माण होता है, उसी प्रकार प्रकृति या प्राकृतिक नियम के रहस्य को जानने में समर्थ मानव बुद्धि दर्शन एवं परीक्षणरूप कारणद्वय के समवाय से विविध विज्ञानों का आविष्कार करता है। घट, कलश आदि आकारगत भिन्नता होने पर भी, ये सब वास्तव में भिन्न पदार्थ नहीं हैं। इसी प्रकार गणित विज्ञान, भूत विज्ञान, रसायन विज्ञान, इत्यादि विज्ञान समूह में विषयगत तथा देशगत भिन्नता होने पर भी ये सब परस्परतः भिन्न नहीं हैं। न्याय शब्द की व्युत्पत्ति से ज्ञात हुआ है कि जिसके द्वारा सत्य की

---

1. "Are they Laws of Thought or Laws of Things? Do they belong to mind or material nature? On the one hand it may be said that science is a purely mental existence, and must therefore confirm to the Laws of that which formed it. Science is in the mind and not in the things, and the properties of mind are therefore all important. It is true that these laws are verified in the observation of the exterior world, and it would seem that they might have been gathered and proved by generalisation, had they not already been in our possession"—

(वही, पृ. ६-७)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्राप्ति होती हैं, सत्य ज्ञान अर्जित होता है, वह न्याय है। पूज्यपाद अमरसिंह अभ्रेय,[१] न्याय, कल्प, देशरूप एवं समंजस रूप पांच शब्दों को उचित (सत्य) अर्थ का वाचक कहते हैं।

प्रकृति का न्याय—प्राकृतिक तथ्य मानव चित्तमुकुर में यथायथ रूपेण प्रतिफलित होने पर विज्ञान शब्द से अभिहित होता है। पूज्यवाद भगवान कपिल प्रत्यक्षलक्षण वर्णन करते हुये कहते हैं कि कांच, स्फटिक प्रभृति स्वच्छ वस्तु समूह जब जिस वस्तु के साथ सम्बद्ध होता है, तब उसकी आकृति को ग्रहण करके, तदाकार में आकारित हो जाता है। चक्षुरादि ज्ञानेंद्रिय कांच आदि के समान स्वच्छ हैं, प्रसाद गुणयुक्त (Trasparent) हैं। अत: ये भी जिस वस्तु के साथ सम्बद्ध होती हैं, उस समय उसी आकार में आकारित हो जाती हैं। सम्बद्ध वस्तु का आकार ग्रहण कर लेती हैं। इन्द्रियों के साथ अर्थ का सम्बन्ध अथवा सन्निकर्ष होने पर सम्बद्ध वस्तु के आकारधारी विज्ञान का उदय होता है। यही है प्रत्यक्ष !

क्या प्रकृति को पूर्णरूप हम देख सकते हैं ? नहीं देख सकते। विदित होता है कि एक अवस्था से अवस्थान्तर में गमन ही जगत का रूप है। परिवर्तन निर्दिष्ट नियमाधीन है। कोई भी घटना आकस्मिक नहीं है। मन में विवेचनादि त्रिविध शक्ति की सत्ता रहती है। इन त्रिविध शक्ति से ही विज्ञानोत्पत्ति होती है। इन्द्रियों के द्वारा जो विषय प्रत्यक्षीभूत होते हैं, मन की धारणा अथवा घृतिशक्ति उसे ग्रहण करके रखती है। इसकी विवेचन शक्ति (The Power of Discrimination) एक वस्तु को अन्य वस्तु से पृथक् करती है। एक प्रकार के संवेदन को अन्य प्रकार के संवेदन से विशेषित करती है। 'यह वह नहीं है, वह इससे भिन्न है' यह सब विवेचन शक्ति द्वारा निर्णीत होता है। मन की समीकरण शक्ति के द्वारा भिन्न पदार्थ समूह में साम्यभाव का आविष्कार होता है। सामान्य ज्ञान का उदय होता है। सामान्य (अविशेष) से ही विशेष का आरंभण होता। (अविशेषद्विशेषारम्भः)। सृष्टि के रहस्य का उद्भेदन करने की चेष्टा करने से यह विदित होता है कि जगत् व्यक्त अवस्था से अव्यक्त अवस्था में आगमन करता है और जिस परिमाण में यह बहिर्देश में आगमन करता है, उसी परिमाण में परिच्छिन्न होता है और उसी परिमाण में विविध आकार भी धारण करता है। जब जगत् सामान्ययुक्त विशेष है, इन्द्रियों के द्वारा गृहीत है, जब मन के द्वारा धृत, विवेचित तथा समीकृत जगत् का प्रतिबिम्ब ही हमारा इन्द्रियगत् ज्ञान है, तब उत्पत्तिशील ज्ञान सामान्य विशेषात्मक होगा, यह सहजगम्य है।

---

१. "अभ्रेय न्यायकल्पास्तु देशरूप समंजसम्"—(अमरकोष) अभ्रेय अर्थात् यथाप्राप्त से अधःपतन (Deviation) भ्रेय से जो अन्य है—अभ्रेय।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"व्यक्तताव्यक्ततामात्रभेदो ह्यान्तरबाह्ययोः ॥" —(सांख्यसार)

हम अन्तः एवं वहिः का वहुषः व्यवहार करते रहते हैं। यह सर्वसाधारण का परिचित शब्द है। इन शब्दद्वय से परिचित होने पर भी शास्त्रों में इनका स्वरूप जिस प्रकार से वर्णित है, उसे अवगत करना आवश्यक है, इसीलिये पूज्यपाद विज्ञान-भिक्षु द्वारा व्याख्यत उक्त शब्दद्वय का रूप विवेचित करना होगा। 'वाह्य पदार्थ नहीं है, मन ही एकमात्र सत् है।, 'नहीं बाह्य पदार्थ ही सत् हैं, मन ही असत् है' 'हम भ्रम में हैं, वाह्य आन्तर रूप से किसी पदार्थ की सत्ता ही नहीं है'। अन्तः एवं बहिः, इन शब्दद्वय का अर्थ जानने से आन्तर-वाह्य पदार्थ घटित परस्पर विरुद्ध विविध प्रश्नों का समाधान प्राप्त हो जाता है। विज्ञानभिक्षु समझाते है कि व्यक्तता, अव्यक्तता से भिन्न आन्तर-वाह्य शब्द में अन्य किसी प्रकार का भेद नही है। भगवान गौतम कहते हैं कि कार्य एवं विकार पदार्थ की आन्तर एवं वाह्यरूप दो अवस्थायें दृष्टिगोचर होती हैं। कार्य अथवा विकार की जो अवस्था स्थूल है, जो हमें प्रत्यक्षीभूत हो जाती है, वह बाह्यावस्था है। जो अवस्था इससे विपरीत है, वह है आन्तर अवस्था। उसे अव्यक्त एवं सूक्ष्म भी कहते हैं। इसी व्यक्त एवं अव्यक्त अवस्था को यथाक्रम से कार्य तथा कारण संज्ञा द्वारा अभिहित करते है। वाह्य ही आन्तर की व्यक्तावस्था है। वह आन्तर का स्थूलभाव है, आन्तर का कार्य है। जो वाह्यपदार्थ के अस्तित्व को अस्वीकार करते हैं, वे भ्रान्त हैं। "वहु प्रापणे" इस प्रापणार्थक 'वह' धातु के उत्तर में 'इस' प्रत्यय करने से वहिः पद सिद्ध हो जाता है। जो वाह्यप्राय है, इन्द्रियगम्य है वह बहिः है। हमने यह समझ लिया। क्रिया अथवा गति से भिन्न, अप्राप्त पदार्थ की प्राप्ति संभव नहीं है। अज्ञात पदार्थ का ज्ञान अथवा प्राप्ति शक्य अथवा साध्य (Possibe) नहीं है। यदि कहा जाये कि यह मानस क्रिया द्वारा होता है, उस अवस्था में मानस क्रिया अथवा गति के द्वारा अप्राप्त वस्तु प्राप्त होती है। अज्ञात वस्तु का ज्ञान होता है। इस स्थिति में दुःख के साथ कहना पड़ता है कि अन्तः एवं वहिः इन शब्दद्वय का वास्तविक अर्थ क्या है, इसका चिन्तन नहीं किया गया। साथ ही गति अथवा क्रिया के स्वरूप की भी सम्यक् उपलब्धि नहीं हो सकी है।

एक अवस्था से अवस्थान्तरगमन, अवस्थान्तर की प्राप्ति ही गति किंवा क्रिया का स्वरूप है। यदि मनः एक अवस्था से अवस्थान्तर में गमन न करे, उस स्थिति मनः की क्रिया हो ही नहीं सकता। जिस अवस्था से मनः अपरावस्था (अन्य अवस्था) में जाता है, मन की उस अवस्था को अन्तरावस्था कहते हैं। इस अन्तरावस्था से गतिशील होकर वह जिस अवस्था में उपनीत होता है, वह मन की बाह्यावस्था है। श्रुति का कथन है कि प्राण, इन्द्रिय, मनः इत्यादि आत्मा का ही कर्मज नाम है। एक

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अपरिच्छिन्न अखण्ड सर्वशक्तिमान सच्चिदानन्दमय ब्रह्म की भिन्न-भिन्न माया परिच्छिन्न अवस्था है। श्रुति का वचन है :—

"स वा एष पुरुष: पन्चात्मा येन सर्वमिदं प्रोतं पृथिवी चान्तरिक्षंच द्यौश्च दिशश्चावांन्तरदिशश्च स वै सर्वमिदं जगत स भूतंस भव्यज्जिज्ञाक्लप्तृ ऋतजा रयिष्ठा: श्रद्धा सत्यो महस्वांस्तमसोऽपरिष्ठात्"—(तैत्तरीय आरण्यक)

जो पुरुष सन्यास द्वारा तत्वज्ञान प्राप्त करते हैं, जो ब्रह्मविद् है; वे सर्वात्मक हो जाते हैं। सन्यास प्राप्ति के लिये शब्दस्पर्शादि गुणपंचक, पृथिव्यादि भूतपंचक, चक्षुरादि ज्ञानेन्द्रिय पंचक, प्राणापानादि वायुपंचक स्वरूपभूत ही है। ब्रह्मस्वरूप पुरुष के लिये समस्त जगत सूत्र में पिरोई मणियों के समान व्याप्त रहता है। पृथिव्यादि वस्तुव्यापी पुरुष वर्त्तमान जगत् हैं, वे ही भूत एवं अतीत जगत् हैं। वे ही भविष्यत् जगत् हैं। तत्वविद् सर्व जगत् स्वरूप हो जाते हैं। श्रुति का यह सारतम उपदेश है। जो स्थूल दृष्टि हैं, वे इसका मर्म नही जानते। तत्वविद् पुरुष भी सामान्य मनुष्य की ही तरह हाथ पैर आदि से युक्त शरीरधारी ही प्रतीत होते हैं। सामान्य दृष्टि से देखने पर उनमें कोई भी विशेषता परिलक्षित नहीं होता। अत: यह कैसे विश्वास हो कि वे सर्व जगत् रूप हो गये हैं? तत्वविद् में ऐसा कोई भी बाह्य लक्षण दृष्टि-गोचर नहीं होता। सन्यास प्राप्त तत्वज्ञानी 'जिज्ञासाक्लप्त' हैं, यथारीति वेदान्त का चिन्तन करते-करते सर्वात्मक रूप में विश्रान्त हो जाते हैं। वे ऋतज हैं, प्रामाणिक सिद्धान्त ज्ञान के द्वारा सर्व जगद्रूप हैं। ब्रह्मविद् ही 'रयिष्ठ' हैं। (रयि = धन, गुरुपदेश, जो इसमें अवस्थित हैं), वे श्रद्धास्वरूप (श्रद्धावान हैं) हैं, वे ही सत्यमय हैं, महस्वान (तेजोमय, स्व प्रकाशरूप) हैं, संसारकारण अज्ञान अथवा अविद्या से वियुक्त होने के कारण मायामय संसार से उर्ध्व में निवास करते हैं। उन्हें गुण-दोष स्पर्श नहीं करता। (त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुष:)।

उद्धृत् श्रुतिवचन का तात्पर्य चिन्तन करने से अनेक अवश्यज्ञातव्य, विवादास्पद तत्व का प्रकृतरूप नयनपथ में पतित होता है। इसीलिये यह कहा जाता है कि एक ही वेदमंत्र मानव का समस्त अभाव दूर कर सकने में सक्षम है। अत: वेद ही कल्पतरू है। मानवीय उन्नति श्रोत का विश्रामस्थल कहाँ है, किस उपाय से, किस साधना से, किस पर चलने से मानव कृतकृत्य होगा, पूर्णकाम होगा, मानव की शक्ति कितनी है, लक्षण एवं स्वरूप क्या है? "एकमेवाद्वितीयम्. अर्थात् एक ब्रह्म के अतिरिक्त पदार्थ है ही नहीं इसका मर्म क्या है? सन्यास के बिना[1] अज्ञान कार्य रूप

---

१. सन्यास क्या है? श्रुति के अनुसार यह परमपुरुषार्थ का अन्तरंगसाधन है; सन्यास से उत्कृष्ट साधन है ही नहीं। "न्यास इति ब्रह्मा हि पर परोऽ हि

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ब्रह्मा तानि वा एतन्यवराणि तपांसिन्यास एवात्यरेचयत् य एवं वेदेत्युपनिषत्"—(तैत्तरीय)

जिस सन्यास को हम हिरण्यगर्भ परमपुरुषार्थ सिद्धि का एक मात्र साधन मानते हैं, उस सन्यास को (विपयासक्त मोहमुग्ध अदूरदर्शी पुरुप वृन्द) भीषणता पदार्थ कहते हैं। वे इसका नामश्रवण करते ही सकुंचित हो जाते हैं। उनके हृदय में आकस्मिक प्रश्न उपस्थित होता है कि परमहृद्य तथा परमद्वेष्य इस सन्यास का तात्पर्यार्थ क्या है ? सन्यास शब्द समपूर्वक 'नि' पूर्वक, 'अस' धातु के उत्तर में 'घञ' प्रत्यय करने से सिद्ध होता हैं। इसका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है सम्यक् त्याग। त्याग शब्द ग्रहण का विरुद्धार्थक है। कर्ममात्र ही त्याग ग्रहणात्मक है। हम ईप्सित रूप से निश्चित पदार्थ को ग्रहण करते हैं, अनीप्सित पदार्थ का त्याग करने के लिये कर्म प्रवृत्त हो जाते हैं। त्याग एवं ग्रहण ही कर्म का रूप है ! परिवर्तन का अर्थ है वर्जनपूर्वक अवस्थान। एक भाव का त्याग करके अन्यभाव में गमन। जब कर्म मात्र त्याग ग्रहणात्मक है, जब संसार त्याग-ग्रहण रूप कर्म की लीलाभूमि है, परिवर्त्तन (Change) ही संसार का स्वभाव है, तब निखिल सांसारिक वस्तु ही त्यागशील है। सभी न्यास एवं त्याग करते रहते हैं। जिज्ञासा है कि तब संसार को परमार्थसिद्धि का अन्तरंग साधन क्यों कहा ? सभी त्याग अवश्य करते है, किन्तु कोई-कोई परमभाग्यवान ही सन्यास (सम्यक् रूपेण त्याग) करने में समर्थ हो पाते हैं। त्याग का दो कारण कहा गया है। जो ईप्सितरूपेण निश्चित होता है, जो अभावबोध एवं तद्भाव पूरण की प्रयोजनोपलब्धि है, व्यक्ति उसे ग्रहण करता है जोअनीप्सित रूप से निर्धारित है, उसका त्याग करने के लिये सचेष्ठ रहता है। राग एवं द्वेष (Attraction and Repulsion) ही ग्रहण एवं त्याग का कारण है। भगवान यास्क कहते है रजोगुण, काम, राग है एवं तमोगुण द्वेष है। जिसकी प्रकृति जितनी ही परिच्छिन्न है, उसके लिये द्वेष्य पदार्थ उतना ही अधिक है। मुनि वात्स्यायन कहते हैं "यत्र मिथ्याज्ञानं तत्र राग द्वेषाविति" जहां मिथ्याज्ञान है, वह राग-द्वेष विद्यमान है। यह कहा जा चुका हैं कि परिच्छिन्न अथवा अपूर्णशक्ति ही मिथ्याज्ञान का कारण है। अतः संकीर्ण आत्मबुद्धि में ही राग-द्वेष होता है। यथोक्त (So called) वैज्ञानिकों से यह कहने पर वह समझ ही नहीं सकते। अतः उनकी ही भाषा में समझाना होगा। कठिन (Solid), तरल (Liquid) तथा वायवीय (Gas) इन पदार्थत्रय का स्वरूप वैज्ञानिकों को ज्ञात है। द्रव्य की कठिनावस्था में अणुसमूह परस्परतः गाढ़ अथवा घनभाव से संसक्त होते है। (Firmly Cohere)।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अणुओं का मध्यवर्ती अवकाश (Intermolecular Space) स्वल्प होता है। इस अवस्था में भेदवृत्ति शक्ति (Repulsion) अभिभूत हो जाने से संसर्ग वृत्ति शक्ति (Mlicular attraction or Cohesion) प्रबल हो जाता है। तमोगुण का प्रादुर्भाव एवं रजोगुण का अभिभव होने लगता है। इस अवस्था में आणविक गति ह्रास को प्राप्त होती है। द्रव्य का जड़त्व, स्थितिशीलत्व अथवा प्रतिघात धर्मत्व (The property of offering resistance) वृद्धिगत होने लगता है। द्रव्यसमूह निर्दिष्ट आकार युक्त हो जाते हैं। द्रव्य की तरलावस्था में अणुसमूह की संसक्ति शिथिल होती है। कठिनावस्था से इस अवस्था में (तुलनात्मक रूप से) भेद वृत्ति शक्ति (रजोगुण) का प्रावल्य होने लगता है। अब अणु समूह स्वाधिकरण में अपेक्षाकृत् अनिरुद्ध अथवा निरर्गलरूप से स्वच्छन्दता के साथ स्पन्दित होने लगते हैं। (The molecue have more freedom of Motion than in the solid) तरल का अपना आकार नहीं होता। वह जिस किसी आधार में स्थित रहता है, उसका ही आकार धारण कर लेता है। तरल पदार्थों में कोई वस्तु डालने (Imersed) में अधिक बाधा नहीं होता। तरल पदार्थ समूह वस्तुतः असंकोचनीय होते हैं (Virtually-in Compressible)। द्रव्य की वायवावस्था में अणुओं में भेद वृत्तिशक्ति अधिकतर प्रबल हो जाती है। गतिशीलत्व वर्द्धित होता है। लघुत्व के कारण वायवीय पदार्थ उद्गमन कर सकता है। इसका भी (तरल पदार्थ के समान) अपना निजरूप नहीं है। वायवीय पदार्थ अतिमात्र संकोचनीय तथा विस्तारी (Eminently Compressible and expansive) होते हैं। तरलावस्था में अणुसमूह स्वाधिकरण में ही स्वच्छन्द रूप से स्पन्दित नहीं हो सकते। तरलावस्था में द्रव्य की गति पृथ्वीतल का अतिक्रमण करके उर्ध्वगामी नहीं हो सकती। वादवीय अवस्था में द्रव्य स्वच्छन्दता से आकाश में विचरण करते रहते हैं। द्रव्य की इन अवस्थात्रय के इतर व्यावर्त्तक धर्म (गुण) का स्वरूप चिन्तन करने से यह विदित होता है कि संघात के गाढ़त्व से जड़त्व की वृद्धि होती है। अतः जड़ वैज्ञानिकों से कहना है कि "यदि आपकी चिन्तना का परिसर (क्षेत्र) जड़ पदार्थ ही नहीं है, उस स्थिति में आप कठिन, तरल तथा वायवीयरूप अवस्था के इतर व्यावर्त्तक गुणसमूह का तात्पर्य ग्रहण करके उसका सम्प्रयोग सूक्ष्मराज्य में अवश्य करें। इससे आपको ज्ञात होगा कि जिस कारण से कठिन (Solid) से तरल में और तरल से वायवीय में क्रमशः पदार्थ की प्रसारणशीलता (व्यापकत्व) अधिक होता जाता है, उसी कारण से तत्वदर्शी सर्वजगत् स्वरूप हो जाते हैं, उसी कारण से उनकी आत्मपरबुद्धि विलुप्त होने लगती है। विद्वान क्रुक

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कहते हैं "A molecule, in the midst of the mass, moves freely. because the attractions are equal in all directions, but a molecule near the Surface is in a very different Condition" (The New Chemistry by Coock, P. 49)

जिनका आकर्षण सर्वभूत में समान है, जिनका प्रेम विश्वव्यापक है, जो आत्मा में सर्वभूत एवं सर्वभूत में आत्मा का निरीक्षण करते हैं, वे ही स्वाधीन भाव से सर्वत्र विचरण करते हैं। उनकी ही गति अव्याहत है। जिस प्रकार से भूतसमूह कठिन अवस्था का त्याग करके तरलावस्था में, तथा तरलावस्था से वायवीय अवस्था में आगमन करते हैं, उसी प्रकार मानव भी उपयुक्त साधना के द्वारा स्वल्पात्मकता, परिच्छिन्नात्म बुद्धि का त्याग करके सर्वात्मक हो जाता है। सार्वभौम हो जाता है। अखण्ड सच्चिदानन्द ब्रह्म भी हो जाता है। कठिन, द्रव्य किस प्रकार से तरलावस्था में तथा तरलावस्था से वायवीयावस्था में संचरण करता है? विज्ञान के अनुसार भेदवृत्ति युक्त ताप (Heat) कठिन को तरल करता है। भेदवृद्धि युक्त ताप की अधिकता से तरल द्रव्य वाष्पीय रूप धारण कर लेता है। इसी प्रकार संसर्ग वृत्तियुक्त शैत्य (ठंडक) से वायवीय एवं तरल द्रव्य कठिन (Solid) हो जाते हैं। ताप एवं शैत्य (Heat and Cold) का रूप वैज्ञानिकों को सम्यक् रीति से ज्ञात है। विज्ञान कहता है कि 'ताप' गति अथवा क्रिया का प्रकार भेद मात्र है। (Heat is a mode of motion)। शास्त्र ने रजोगुण को क्रियाशील कहा है। अतः रजोगुण का प्रादुर्भाव ही ताप है। जगत् सृष्टिकर्त्ता यदि सविता (सूर्य) को जगत् से अपसारित कर लें, उस स्थिति में किसी भी जागतिक वस्तु में गति की सम्भावना ही नहीं रह जाती। ऐसी अवस्था में जगत का जगत्व विलुप्त हो जाता। जागतिक वस्तु समूह चिरकाल के लिये जड़ पिण्डाकार ही अवस्थान करता। शास्त्र का उपदेश है कि चिन्तशुद्धि ही कर्म का प्रयोजन है। शास्त्र निर्दिष्ट कर्म के द्वारा चित्तशुद्धि होता है। चित्तशुद्धि किसे कहते हैं? इस अतीव प्रयोजनीय प्रश्न का उत्तर मिल जाने पर सर्वसंशय विदूरित हो जाते हैं। यहाँ यही कहना है कि चित्त की वासना अथवा कामना ही चित्त का मल है। इस मल को शुद्ध करना ही चित्त का शोधन है। संस्कार के कारण हम अग्नि को दाहक पदार्थ कहते हैं। संस्कार के ही कारण हम अपने पुत्र से स्नेह करते हैं। उसे दुखी देखकर हमारा चित्त भी दुखी हो जाता। मलिन संस्कारों के कारण हम अन्य से द्वेष करते हैं। अन्य के हृदय भेदी दुःख की उपेक्षा करने लगते हैं। एक प्रकार से संस्कार ही द्वैतबुद्धि का कारण है। शक्ति अथवा अधिकार के अनुसार शास्त्रोक्त

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संसार का त्याग नहीं हो सकता। परिणामतः श्रद्धावान, सत्यमय तथा गुरुपदिष्ट न होने से तत्वज्ञान का उदय नहीं होता। इस वाक्य का तात्पर्य क्या है, इसकी मीमांसा इस श्रुतिवचन द्वारा सम्यक् रूप से हो जाती है।

जब तक आत्मज्ञान का उदय नहीं होता, जब तक विगलित निखिल भेद अखण्डैकरस ब्रह्म की प्रतिपत्ति नहीं हो जाती, तब तक कार्यकारण का पार्थक्यबोध एवं आन्तर-बाह्य की भेदबुद्धि का रहना अवश्यम्भावी है। उस समय तक प्रकृति के पूर्णरूप दर्शन की शक्ति विकसित नहीं हो सकती। जब तक आत्मज्ञान नहीं होता, तब तक यह सत्यानृत ज्ञान को लेकर जगत् में रहना ही होगा। जो जिसका कारण है, जो जिसका व्यापक है, वही उसकी आत्मा है। देह की आत्मा है इन्द्रिय। इन्द्रिय की आत्मा बुद्धि, बुद्धि की आत्मा गगनोपम पुरुष। यह गगमोपम चिन्मय पुरुष ही परमात्मा हैं। वे अकार्य, अविकारी हैं। इनका कोई भी निमित्त कारण नहीं है। ये कारणान्तर के द्वारा पिहित नहीं हैं। उक्त है:—

कर्म करने से प्रथमतः अशुभ संस्कार भस्मीभूत हो जाते हैं और हृदय में शुभ संस्कारों का आधान होता है। चित्तका जड़त्व विदूरित होता है। संकीर्ण चित्त विस्तीर्ण हो जाता है। चित्त में समवेदन, दया आदि संवृत्ति समूह का उदय होने लगता है। कामना उच्छिन्न होने लगती है। आत्मज्ञान का विस्तार होता है। चित्त सत्वगुण की वृद्धि का अनुभव करता है। इस अवस्था में ही काम्य कर्म समूह का त्याग हो सकता है। भगवान कहते हैं "काम्यानां कर्मणां न्यासं सन्यासं कवयोः विदुः"—(गीता) अर्थात् काम्यकर्म के त्याग का नाम है 'संन्यास' श्रुति ने इसी कारण से सन्यास को परमार्थ सिद्धि का अंतरङ्ग साधन कहा है। कर्म करते चित्तशुद्धि होने से आत्मज्ञान का क्षेत्र विस्तृत हो जाता है। यही सन्यास है। शुद्धचित्त ही यह समझ सकते है कि ब्रह्म ही एक मात्र पदार्थ है। (सर्वं खल्विदं ब्रह्म)। उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। राग-द्वेष ती मिथ्या ज्ञान प्रसूत है। साधकजन इसी अवस्था में उपनीत हैं। उस समय उनमें किसी भी वस्तु को ग्रहण करने की प्रवृत्ति नहीं रहती। वे उस समय पूर्ण एवं सर्वमय हो जाते हैं। न्यास के दो कारण है। प्रथम कारण कहा जा चुका। द्वितीय कारण भी प्रदर्शित हो चुका। सन्यास ही परमसाधन है। ब्राह्मण के अतिरिक्त किसी को भी सन्यास का अधिकार नहीं है। इसका भी विचार करना चाहिये। प्रकृत (वास्तविक) ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य के लिये सन्यास साधन करना साध्य नहीं है। आजकल सन्यास के प्रति जो विद्वेपात्मक भाव परिलक्षित होता है, ब्राह्मणत्व का ह्रास ही उसका कारण है। गेरुआ वस्त्र धारण करने मात्र से ही सन्यास नहीं हो जाता। सन्यास दुःसाध्य साधना है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"भूतात्मा चेन्द्रियात्मा च प्रधानात्मा तथा भवान् ।
आत्मा च परमात्मा च त्वमेकः पंचधा स्थितः ।।"

—(सायणभाष्यधृत् पुराणवचन)

जो जिसका व्यापक है, जो जिसका कारण है, वह उसकी आत्मा है । इस पुराणवचन से यही सिद्ध हो जाता है । 'मन से वाह्य जगत की सृष्टि होती है', इस वाक्य के तात्पर्य चिन्तन से यह ज्ञात होता है कि कारण अथवा सूक्ष्मावस्था से कार्य अथवा स्थूलावस्था का विकास होता है । मनः वाह्यभाव की, इन्द्रियगम्य विषयों की आन्तरावस्था है । मनः किसे कहते हैं, मन की शक्ति का रूप क्या है ? यह हमें यथायथ रूप से ज्ञात नहीं है । अतः मन से सृष्टि होने की उक्ति तथा मन के निखिल व्यवहार में प्रतिष्ठित होने के सत्य को हम दुर्बोध्य अथवा अयौक्तिक मानते हैं । पूज्य-पाद भगवान वेदव्यास कहते हैं "ते व्यक्त सूक्ष्मगुणात्मकः" शास्त्र का अनुशासन, सत्व, रजः एवं तमः का परमरूप है । पारमार्थिक अथवा नित्यभाव दृष्टिपथ में नहीं आता । जो दृष्टिपथ में आता है वह लौकिक, मायिक, क्षणभंगुर, अतः अत्यन्ततुच्छ है । अल्पसार गुण परिणाम है ।[1]

तर्कशास्त्र अथवा लाजिक का स्वरूप दर्शन जहां तक हो चुका है, उससे ज्ञात होता है कि तर्कशास्त्र चिन्तन अथवा मनन का विज्ञान है । यह दर्शन एवं परीक्षण द्वारा (प्रत्यय = Observation and Experiment) लब्ध ज्ञान के सत्यासत्य का विचार करता है । यह अन्य विज्ञानों की भित्ति है । अन्य विचारों का विचारपति है । विचारपति का कर्त्तव्य क्या है ? विचारपति किसी प्रमाण से (Standard) सद-असद का विचार करते हैं, किस प्रमाण द्वारा सत्यासत्य का निर्वाचन करते हैं ? जो विधिज्ञ हैं, व्यवहार पण्डित (Lawyer) हैं, वे इस प्रश्न का उत्तर जानते हैं । सत्य शब्द की व्युत्पत्ति से ज्ञात होता है कि जो सद्—अव्यभिचारी है, वह सत्य है । सत्य का ज्ञान अथवा सत्य । अव्यभिचारी ज्ञान = सत्य ज्ञान । न्याय के द्वारा सत्य का ज्ञान होता है । जिस प्रकार जो निश्चित होता है, बुद्धि का विषयीभूत होता है, यदि किसी काल अथवा देश में उसका व्यभिचार घटित न हो, तब वह सत्यज्ञान है (यह भगवान शंकराचार्य का मत है) ।

कोई भी कार्य आकस्मिक नहीं है । कोई भी परिणाम अनियमित रूप से संघटित नहीं होता । प्राकृतिक वस्तु निर्दिष्ट नियम से ही परिवर्त्तित होती है ।

---

१. "तथाच शास्त्रानुशासनम्—गुणानां परमं रूपं न दृष्टि पथमृच्छति ।
यत्तु दृष्टिपथं प्राप्तस्तन्मायैव सुतुच्छकमिति ।"

—(योगसूत्रभाष्य)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

 Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अन्यथा यदि वे बिना नियम से परिवर्त्तित होतीं, उस अवस्था में किसी भी प्रकार के ज्ञान की उत्पत्ति हो सकना संभव नहीं था। प्राकृतिक वस्तु समूह निर्दिष्ट नियमानुवर्त्तिता से परिवर्त्तित होते हैं। विश्वनियामक विश्वपिता जिस वस्तु में जितनी शक्ति प्रदान करते हैं, वह वस्तु वही कर्म कर सकने में सक्षम होती है। उसके अतिरिक्त अन्य कोई भी कर्म कर सकना उसके द्वारा सम्भव ही नहीं है। अतः विद्वान वैज्ञानिक द्रव्य के धर्म निर्धारण में सक्षम होते हैं। जिस कारण से जो कार्य एक वार आविर्भूत होता है, उसी अविकल कारण से पुनः उसी प्रकार के कार्य का आविर्भाव होगा, यह कहा जा सकता है। पूर्वोक्त अन्वयी एवं व्यतिरेकी न्याय का (The law of idintity and the law of difference) स्वरूप चिन्तन करने से जो कुछ ज्ञात होता है, उससे यह कहा जा सकता है कि जो सत् है वह सत् है। जो असत् है, वह असत् है। सत् कभी भी असत् नहीं हो सकता और असत् भी कभी सत् नहीं हो सकता। उक्त न्यायद्वय भी इस प्राकृतिक नियम से अतिरिक्त पदार्थ नहीं है।

उपक्रमणिका के प्रथमांश में कहा गया है कि "प्रमा अथवा सत्यज्ञान का जो करण है, वह प्रमाण है। प्रमाण का यह लक्षण क्या अन्वर्थ हो गया ? इस शीर्षक के अन्तर्गत जो कुछ लिखा गया है उससे यह ज्ञात हो जाता है कि महतत्त्व से सूक्ष्मतम भौतिक परिणाम पर्यन्त सभी परिणाम त्रिगुणात्मिका प्रकृति के विकार हैं। एक अपरिच्छिन्न अथवा पारमार्थिक सत्य ही माया परिच्छिन्न विविध विशिष्टरूप धारण करता है। अविशेष से विशेष आविर्भूत होता है। पूज्यपाद भगवान पतञ्जलिदेव कहते हैं कि त्रिगुणात्मक प्रकृति की विशेष-अविशेष, लिंगमात्र-अलिंग रूप से चतुर्विध अवस्था अथवा पर्व की उपलब्धि होती है। स्थूलभूत तथा इन्द्रिय, इस प्रकृति के विशेष पर्व हैं। पंचतन्मात्र तथा अन्तःकरण इसके अविशेष पर्व हैं। बुद्धि लिंगतन्मात्र है, तथा अव्यक्त, गुणत्रय की साम्यावस्था अलिंग पर्व है। महत्तत्व से लेकर स्थूलभूत पर्यन्त सभी एक मूलशक्ति के परिच्छिन्न रूप हैं। सभी परिच्छिन्नता समभाव की परिच्छन्नता नहीं है परिच्छेद का तारतम्य है। शक्ति की अवस्थायें अनन्त हैं। परिच्छेद भी स्थूलतः सूक्ष्मतः असंख्य है। अतः किस अवस्था में शक्ति किस प्रकार से क्रिया कर रही है, परिच्छिन्न शक्ति युक्त मनुष्य यह नहीं जान सकता। अलिंगावस्था से विशेपावस्था पर्यन्त प्रकृति की प्रागोक्त चतुर्विध अवस्था (पर्व) का जिन्होंने सम्यक् रूपदर्शन किया है, उनका ही प्रकृति सम्बन्धित ज्ञान अभ्रान्त है। अवस्था तथा देशकाल भेद से शक्ति भिन्नवत् क्रिया करती है, जिसका कोई प्रभाव उनके ज्ञान पर नहीं पड़ता। किस अवस्था में कैसे देशकाल में शक्ति की क्या क्रिया होगी, इससे वे अवगत रहते हैं। इसी प्रकार सभी अवस्था और देशकाल विशेष में भी वे सत्यासत्य का निर्वाचन करने

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

में सक्षम होते हैं। उनको स्थूल-सूक्ष्म समस्त क्रिया समूह प्राकृतिक एवं सत्य रूप से आदृत होता है। वे अहिफेन को विष तथा अमृत, उभयरूपेण स्वीकार एवं उपलब्ध करते हैं। ऐसे व्यक्ति का समस्त ज्ञान अवितथ है। जिनकी स्थिति इस प्रकार की नहीं है, जिन्होंने प्रकृति का पूर्णरूप नहीं देखा है, उन्हें परिच्छिन्न अथवा सत्यानृत ज्ञान लेकर ही वास करना होगा। वे संशयविरहित ज्ञान द्वारा ज्ञान प्राप्त कर सकने अक्षम रह जाते हैं।

इस विवेचना से विदित होता है कि प्रकृति विधि-निषेधात्मक नियमग्रंथ (Law Book) है। जिनका प्रत्यक्ष सर्वव्यापक है, जिनकी स्मृति ध्रुवा है, सत्या-सत्य निर्वाचन की प्रकृत शक्ति उन्हें ही प्राप्त होती है। परिच्छिन्नात्मज्ञान, रागद्वेष-वशवर्त्ती, सतत् विक्षिप्तचित्त पुरुष कभी भी अभ्रान्त अथवा अव्यभिचारी, ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता। जो प्रत्यक्ष अनुमान एवं युक्ति की भित्ति है, आश्रय है, वह प्रत्यक्ष अव्यभिचारी, तथा व्यवसायात्मक न होने पर ही अनुमान का अव्यभिचारित्व सम्भव होता है। तर्कशास्त्र अथवा लाजिक का प्रामाण्य शुद्ध एवं व्यापक चित्त के अधीन है। राग-द्वेष शून्य विमल हृदय में ही प्राकृतिक न्याय प्रतिबिम्बित होता है। जिन्होंने प्रकृतिरूप नियमग्रंथ का उपदेश उपलब्ध किया है, जिनकी स्मृति ध्रुवा है, जो विचारकाल में राग-द्वेष के वश होकर अन्यथावादी नहीं होते, जिनकी स्मृति में शास्त्र यथायथरूपेण सतत् जाग्रत है, वे ही अभ्रान्त रूप से सत्यासत्य का निर्वाचन करने के अधिकारी हैं। विद्वान जेवन्स ने भी ऐसा ही कहा है।[1]

समस्त प्राकृतिक घटनाएं नियमित रूप से संघटित होती हैं। कार्यमात्र का कारण है। समान कारण से सर्वत्र समान कार्य प्रसवित होता है। शक्ति कभी ध्वंस

---

(1) "Logicians' indeed, appear to me to have paid insufficient attention of the fact that mistakes in reasoning are always possible, and of not unfrequent occurence. The Laws of thought are often called necessary laws, that is, laws which cannot but be obeyed. Yet as a matter of fact, who is there that does not often fail to obey them? They are the laws which the mind ought to obey rather than what it always does obey. Our thoughts cannot be the criterion of truth, for we often have to acknowledge mistakes in arguments of moderate complexity, and we sometimes only discover our mistakes by collision between our expectations and the events of objective nature"

(The Principles of Science)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नहीं होती। यह सब कथन सत्य है, तथापि इन सब सत्यता की उपलब्धि के लिये चित्त की एकतानता, संयम, धैर्य अत्यावश्यक है। इन्द्रियों के दास तथा भोगैश्वर्य प्रसक्त चित्त में ऐसी एकतानता, संयम, धैर्य कैसे होगा ? जो चित्तसंयम को जड़त्व का कारण तथा अकिंचित्कर मानते हैं, वे कैसे वैज्ञानिक हैं ?

(चतुर्थभाग समाप्त)

S.J.V.J. PRATISHTHAN
LIBRARY
Jangamawadimath, Varanasi
Acc. No

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDAL
LIBRARY
Jangamwadi Math, Varanasi
ACC No. 8599

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संदर्भग्रन्थ (संस्कृत)

१. सांख्य दर्शन
२. कृष्ण यजुर्वेद संहिता
३. ऐतरेय आरण्यक
४. न्यायदर्शन
५. महाभाष्य
६. तत्वचिन्तामणि
७. न्यायसिद्धान्तमंजरी
८. शारीरकभाष्य
९. वार्त्तिक सूत्र
१०. सारस्वत व्याकरण
११. वाक्यपदीय
१२. वाजसनेय संहिता
१३. महीधर भाष्य
१४. ऋग्वेद संहिता
१५ ऐतरेय ब्राह्मण
१६. पदार्थधर्मसंग्रह, प्रशस्तपादाचार्यकृत्
१७. महाभारत
१८. वैशेषिक दर्शन
१९. तर्कसंग्रह
२०. उपस्कार, शंकरमिश्र कृत्
२१. भाषापरिच्छेद
१२. वेदान्तदर्शन
२३. मार्कण्डेय पुराण
२४. अष्टांगहृदय संहिता
२५. तत्वबोधिनी पत्रिका
२६. वेदान्तपरिभाषा
२७. पांतजलसूत्र भाष्य
२८. छान्दोग्योपनिषद्
२९. निरुक्त टीका
३०. श्रीमद्भगवद् गीता
३१. निरुक्त भाष्य
३२. पातंजल दर्शन
३३. योगवार्तिक
३४. सर्वोपनिषद् सार
३५. यजुर्वेद
३६. अथर्ववेद
३७. मुण्डकोपनिषद्
३८. पुरुषसूक्त
३९. सायणभाष्य
४०. शुक्ल यजुर्वेद संहिता
४१. बृहदारण्यक
४२. वैयाकरणभूषणसार, हरिवल्लभ कृत्
४३. कठोपनिषद्
४४. तत्वचिन्तामणि
४५. तत्वकौमुदी
४६. वात्सायन भाष्य
४७. पंचदशी
४८. वाक्यपदीय
४९. योगवाशिष्ठ
५०. सुश्रुत संहिता
५१. चरक संहिता
५२. तैत्तरीय आरण्यक
५३, अमरकोष
५४. अमरकोष टीका
५५. सांख्यकारिका
५६. मनुसंहिता
५७. काशिका
५८. सांख्यसूत्रवृत्ति, अनिरुद्धकृत
५९. गौतमसंहिता
६१. शारीरिक सूत्र
६२. राजमार्त्तण्डाख्यवृत्ति
६३. तैत्तरीय ब्राह्मण
६४. सायणभाष्य
६५. महीधरभाष्य
६६. शतपथ ब्राह्मण
६७. शब्दकौस्तुभ
६८, सर्वदर्शनसंग्रह
६९ काशिकावृत्ति
७०. सांख्यप्रवचनभाष्य
७१. अर्थसंग्रह, लोगाक्षिभास्करकृत्
७२. मीमांसापरिभाषा
७३. प्रकाशाख्य टीका, पुण्यराजकृत्
७४. आत्मतत्व विवेक
७५. नारदपांचरात्र
७६. महाभाष्यटीका, कैयटकृत्
७७. योगसूत्रभाष्यटीका, वाचस्पतिमिश्रकृत्
७८. मुक्तावलि
७९. मेदिनी टीका
८०. मनोरमा
८१. सुपद्मव्याकरण टीका
८२. शब्दरत्न, हरिदीक्षितकृत्
८३. ताण्ड्यमहाब्राह्मण

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

८४. पंचपादिका
८५. पंचपादिका विवरण, श्रीप्रकाशत्य-यतिकृत्
८६. पूर्वमीमांसादर्शन
८७. बीजगणित भास्कराचार्यकृत्
८८. शारीरकभाष्य टीकागोविन्दानन्दकृत्
८९. रामायण, वाल्मीकीकृत्
९०. व्यासाधिकरण माला टीका
९१ श्वेताश्वतर उपनिषद्
९२ कृष्णयजुर्वेद संहिता
९३. आनन्दगिरिकृत् टीका.
९४. नारायण विरचित दीपिका
९५. भोजवृत्ति
९६. अमरकोष टीका, भानुजी कृत्
९७. श्रीशबरस्वामीकृत् मीमांसा दर्शनभाष्य
९८. तर्कसंग्रह
९९. काव्यदीपिका
१००. काव्यदीपिका
१०१ उपमानचिन्तामणि, गंगेशोपाध्याकृत्
१०२. काव्यादर्श
१०३. काव्य प्रकाश
१०४ काव्यदीपिका
१०५ न्यायविन्दु
१०६ सिद्धान्त चन्द्रोदय
१०७. न्यायवृत्ति
१०८. सुपद्मव्याकरण की मकरन्दाख्य टीका
१०९. रहस्याख्य तत्वचिन्तामणि टीका मथुरानाथकृत्
११०. जागदीशी व्याख्या
१११. साहित्य दर्पण
११२. सिद्धान्त कौमुदी
११३. शारदा तिलक
११४. ध्यानविन्दुपनिषद्दीपिका
११५. न्यायवार्त्तिक
११६. वेदान्त परिभाषा
११७. अद्वैतब्रह्मसिद्धि
११८. कारकवादार्थ, नागेशभट्टकृत्
११९. सारमंजरी
१२०. शक्तिबोध
१२१. व्युत्पत्तिवाद गदाधर शिरोमणीकृत्
१२२. शब्दशक्तिप्रकाशिका
१२३. शब्दार्थरत्न
१२४. जैमिनीय न्यायमालाविस्तर
१२५. वृहदेवता
१२६. वैशेषिक दर्शनोपस्कार
१२७. चरक संहिता (चक्रपाणि टीका)
१२८. सन्निकर्षवादरहस्य, गंगेशोपाध्यायकृत्
१२९, तर्कामृत
१३०. पुरुषसूक्त
१३१. नासदीयसूक्त
१३२. चरणव्यूह
१३३. शुक्ल यजुर्वेद सर्वानुक्रमसूत्र
१३४. विष्णुपुराण
१३५ पाणिनीय शिक्षा
१३६. सांख्यसूत्रवृत्ति
१३७. मुक्तिकोपनिषद्
१३८. मन्त्रमहोदधि
१३९. कूर्मपुराण
१४०. नीतिसार
१४१. पंचपदिका

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संदर्भग्रन्थ (आंग्लभाषा)

1. Dictionery of Science, By—G. Radwell.
2. Correlation of Physical Forces, By—Gove,
3. Elementary Statics and Dynamics, By—W. N. Boulflowers.
4. First Principles, By—H. Spencer.
5. Analysis of Human Mind, By—J. Mill.
6. Principles of Science, By—J.evens.
7. Religion and Philosophy, By –Haughton.
8. Mental Science, By—Bain
9. The Conservation of Energy, By—Mill.
10. Lectures on Metaphysics, By—Hamilton.
11. Natural Philosophy, By—Ganots.
12. Lessons in Elementary Anatomy, By—Mivart.
13. Mind and Body, By—Bain,
14. Fragments of Science, By—Tyndall.
15. Lectures on Chemistry, By—Noad.
16. Cure of Melancholy.
17. Doctrine of Descent.
18. Logic, By—Jevon.
19. Zanoni, Book II, ivth.
20. Pathology and Marbid Anatomy, By—Green.
21. Medical dictionary, By—Dr. Hooper.
22. Elementary Physiology, By—Haxlay.
23. Types of Ethical Theory, By—Martinu.
24. Hand Book of Fhysiology, By—Kerks.
25. Green's Pathology.
26. Physiology, By—Huxley.
27. Physiology, By—Foster.
28. System of Logic, By—J. S. Mill.

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

29. Chips from a German Workshop, By—Maxmu'er.
30. Physical Religion, "
31. Natural Religion, "
32. Lectures on Veda, "
33. Natural Philosphy, By—R. Ganot.
34. Selection from Berkley—Fraser.
35. Chemical Physics, By—Miller.
36. Analysis of Human Mind, By—Mill
37. An Dutline of the Sciences of Heat & Electiicify.
38. The conservation of Energy.
39 Elementary Algebra, By—J. H. Smith.
40. The Philosophy of the conditioned, By—Mansyil.
41. The Spectator, By—Addision.
42. Unseen Uuiverse, By—Tail and Bylfore.
43. Histroy of Conflict between Religion and Science, By—Draper.
44. Recent Advances in Physical Science, By—Tait.
45. A Dictionery of Science, By—Rodwell.
46. Concepts of Modern Physics—By—Rodwell.
47. Outlines of Astronomy, By—Sir John Hershall.
48. Webster's Etymological Dictionary.
49. Chember's Etymological Dictionary.
50. Outilnes of Phychology, By—Sylle.
51. Outlines of Evolution, Philosophy, —By—M. E. Cazells.
52. Men in the Past, Pressent and Future, By—Buchner.
53. History of Philosophy, By—Uberweg.
54. The History of Philosophy, By—Lowes.
55. Logic, By—Uberweg.
56. Popular Lectures on Scientific Subjects, By—Heimholtz.

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

57. Dictionary of Science, By—Rodwell.
58. The Science of Kelle's Latest Discoveries.
59. The Science of Evolution, By—Huxley.
60. The Day After Death, By—Lowis Figuior.
61. System of Positive Polity, By—A. Comte.
62. The Students English Dictionary, By—J. Cgilvie
63. The Study of Religion, By—Martineau.
64. A System of Chemistry of Inorganic Body, By—Thompson.
65. The Chemistory of Craetion, By—Ellis.
66. Analysis of the Phenomena of the Human Mind, By—Mill.
67. The Romance of Mathematics, By—Hampson.
68. Astronomy, By—J. N. Lockyer.
69. Ganot's Natural Philosophy.
70. Hamilton, By—John Veitch.
71. The five Scenses of Man, By—Jullius Bernstain.
72. Popular Lectures on Scientific Subjects, By—Helmholtz.
73. Selections from Berkley, By—Fraser
74. Locke, By—A. C. Campbell.
75. Fortnightly Review, December 1886, By—Huxley
76. Physical Optics, By—Glagebrook.
77. The New Chemistory, By—Cooke.
78. The Building of the kosmas; By—Annie Besant.
79. The Secret Doctrine, By—M. Blavatsky.
80. Antiquity of Hindu Medicine, By—J. Royle.
81. History of Medicine, By—S. A. Wise.
82. The Astrological self Instructor, By—Suryanarayan Rao
83. Matter and Motion; By—Maxwell.
84. The Elements of Statics and Dynamics, By—Loney

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

85. Elementary Dynamics, By—Willson.
86. Mental & Moral Science, By—Bain.
87. Decarts, By—J. P. Mahoffy.
88. A Study of Spinoza, By—J. Martineau.
89. A Study of Religion, By—Martineau
90. Handbook of Moral Philosophy, By—Calderwood
91. Utilitarialnsm, By—J. S. Mills.
92. Kant, By—W. Wallace.
93. Fifche, By—R. Adamson.
94. Mental Philosophy, By—A. Smee.
95. The Science of Language, By—Maxmuller.
96. Observations on the Nature and Tendency of the Doctrine of Hume, By—Brown
97. Blackwoods Edinburgh Magazine.
98. The Physiology of Mind, By—Moudslay.
99. Occulf Science in Medicine, By—F. Hartmann.
100. Psychology, vol II, By—H. Spencer.
101. Algebra, By—K. P. Basu.
102. Arthmetic, By—P. Ghose.
10૩. Essays, First and Secoud Series, By—Emerson (Compensation).
104. The Rationale of Mesmerism, By—A. P. Sinnet.
105. Philosophy, of Mesmerism, By—John Bovee Dods.
106. Chemistry of Organic Bodies, By—T. Thompson.
107. Natural Law in Spiritual world, By—Henery Drummond.
108 Essays-Scientific, Political, and speculative, By—H. Spencer.
109. August comte and Positivism, By—J. S. Mill.
110. Kaut, By—W. Wallace.
111. Hagel, By—Edward Caird.

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रकृतिरूप वेद ही सभी विज्ञानों का प्रभव उत्पत्ति स्थान है। प्रकृति ही सभी ज्ञानों की प्रकाशिका है। जिस प्रकृतिरूप वेद के अध्ययन के द्वारा बहिर्मुख वृत्तियुक्त मानव जड़ विज्ञान की उन्नति कर सका है, उसी प्रकृतिरूप वेद के अध्ययन से योगी अध्यात्म विज्ञान का आविष्कार करते हैं। प्रकृति वेद के उपदेश श्रवण के अभाव में मानव नूतन आविष्कार करने में असमर्थ है। समस्त मानव कृति प्रकृतिरूपी वेद की ही अनुकृति है।

—योगत्रयानन्द जी

भारतीय विद्या प्रकाशन

पो० बाक्स नं० *1108*
कचौड़ी गली,
वाराणसी—*221001*

1, यू० बी० जवाहर नगर
बँग्लो रोड,
दिल्ली—*110007*

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi